क्रान्ति का देवता

सरदार भगतसिंह

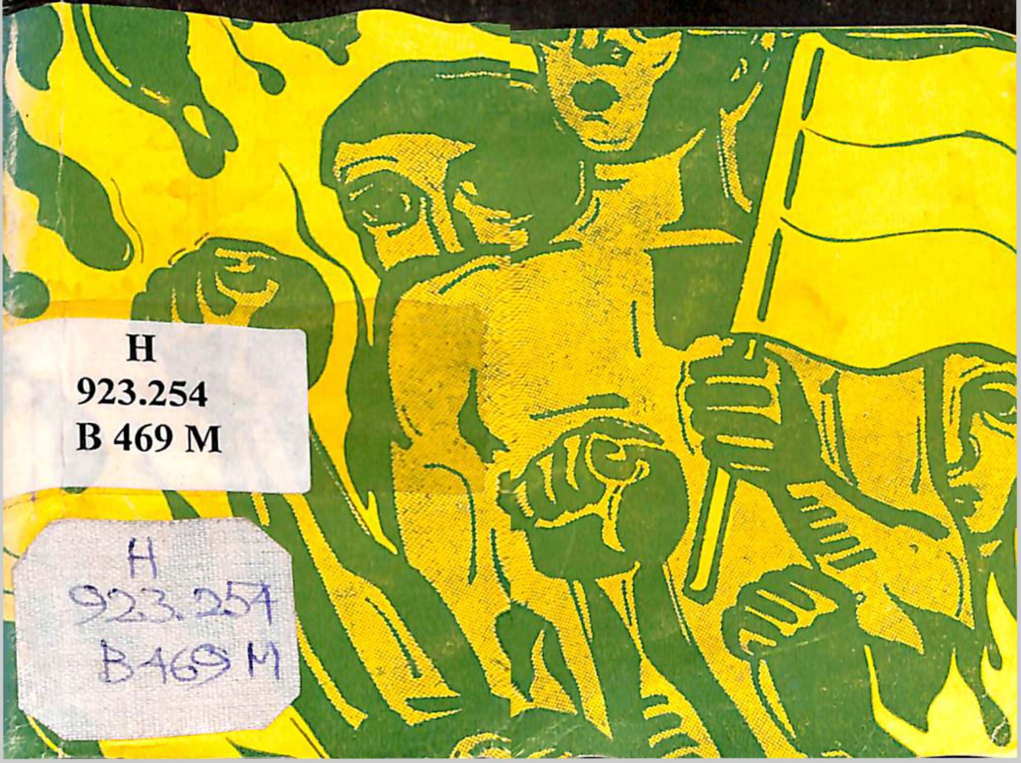

H
923.254
B 469 M

H
923.254
B469 M

क्रान्ति का देवता

सरदार भगतसिंह

लेखक
जगन्नाथ प्रसाद मिश्र

सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली-110007

Library IIAS, Shimla
H 923.254 B 469 M
00077937

H
923.254
B469M

Acc. No. 77937
Date 12/3/92
SIMLA.

प्रकाशक : सन्मार्ग प्रकाशन
16, यू. बी., बंग्लो रोड, जवाहरनगर
दिल्ली-110007

© सन्मार्ग प्रकाशन

संस्करण : 1989

मूल्य : 12.00

मुद्रक : प्रिंट आर्ट, नारायणा इन्डस्ट्रियल
एरिया, फेस-1, नई दिल्ली-28

अनुक्रमणिका

१. जन्मोत्सव	...	...	७
२. लाहौर में	...	...	६
३. लाहौर से बाहर	...	...	१२
४. कानपुर में	...	...	१५
५. विचार प्रवाह	...	...	१८
६. सत्याग्रही जत्था	...	...	२१
७. परीक्षा	...	...	२३
८. नौजवान भारत सभा	...	...	२५
९. रामलीला	...	...	३०
१०. शहीद दिवस	...	...	३२
११. विचार संघर्ष	...	...	३५
१२. चन्द्रशेखर आज़ाद	...	...	३९
१३. नई संस्था	...	...	४२
१४. साइमन कमीशन	...	...	४६
१५. बदला	...	...	४९
१६. हत्या के बाद	...	...	५१
१७. ट्रेड डिस्प्यूट बिल	...	...	५३
१८. असेम्बली में बम्ब	..	...	५६
१९. लिखित बयान	...	...	५९
२०. क्रान्ति क्या है ?	...	...	६३
२१. भूख-हड़ताल	...	...	६६

२२. दृढ़ता ६६
२३. फैसला ७२
२४. फाँसी के पहले ७४
२५. फाँसी ७७
२६. उपसंहार ७६

जन्मोत्सव

पंजाब में लायलपुर नाम का एक जिला है। कहते हैं, भारतवर्ष में यहाँ का गेहूँ सबसे बढ़िया होता है। यहाँ के निवासी बड़े लम्बे कद के और हृष्ट-पुष्ट होते हैं। देश के विभाजन के बाद से यह जिला अब पाकिस्तान के अन्तर्गत है। आज से पचपन वर्ष पहले की बात है, सन् १६०७ के सितम्बर मास में, इसी जिले के बंगा नामक ग्राम में एक क्षत्रिय सिख परिवार के यहाँ बड़ी धूम-धाम हो रही थी। इस घर में एक पुत्र का जन्म हुआ था।

ग्राम भर के नर नारी नवजात शिशु की दादी को बधाइयाँ दे रहे थे। किन्तु वह वृद्धा इस खुशी के अवसर पर भी शान्ति-पूर्वक बैठी थीं। उनके तीन पुत्र थे। इस समय वे तीनों ही घर पर नहीं थे। यह सारा परिवार का परिवार ही महान देश-भक्त था। नवजात शिशु के चाचा सरदार स्वर्णसिंह को ब्रिटिश सरकार ने देश-भक्ति के अपराध में जेल में बन्द कर रखा था। दूसरे चाचा सरदार अजीत सिंह जी महान क्रान्तिकारी थे, सरकार ने उन्हें आजीवन काल के लिए देश से निर्वासित कर दिया था। बेचारी बुढ़िया को इस सुअवसर पर अपने तीनों पुत्रों की याद आ रही थी।

कभी-कभी समय का घटना-चक्र बड़ा अजीब होता है। जिस ब्रिटिश सरकार ने देश-भक्त भारतीयों को बड़े-बड़े महान कष्ट दिये थे, जो अपनी निर्दयता के लिये बहुत बदनाम थी। इसी सरकार ने सरदार किशनसिंह के यहाँ पुत्र होने की बात सुनकर

उन्हें जेल से कुछ दिनों को इसलिए छोड़ दिया कि वह अपने घर जाकर पुत्र के जन्मोत्सव में भाग ले सकें।

जैसे ही किशनसिंह जी घर पहुँचे वैसे ही पुत्र-जन्म की खुशी में चार चाँद लग गये। सारे गाँव भर ने इस खुशी में भाग लिया, तरह-तरह की मिठाइयाँ बाँटी गईं। दीन-दुखियों को भरपूर दान दिया गया। बुढ़िया दादी बड़े लाड़ से नवजात शिशु को उसी दिन से बड़े 'भागों वाला' अर्थात् बड़ा भाग्यवान कहा करती थी। इसीलिये उन्होंने बालक का नाम भी भगतसिंह रखा।

सरदार किशनसिंह के घर का वातावरण बड़ा धार्मिक था। उनकी माता व पत्नी बड़ी धर्मपरायण महिलाएँ थीं। बालक भगतसिंह के कानों में नित्यप्रति धार्मिक श्लोकों की ध्वनि पड़ा करती थी। केवल सुनते रहने से ही बालक को तीन वर्ष की अल्प आयु में गायत्री मंत्र कंठस्थ हो गया था। जिस समय वह अपनी तोतली मीठी वाणी में गायत्री मंत्र का पाठ करता था तो सुनने वालों को बड़ा प्रिय लगता था। वे बड़े प्रसन्न होकर उससे बार-बार सुनाने के लिये कहते थे।

एक कहावत है, पूत के पांव पालने में ही दिखाई पड़ जाते हैं। बालक भगतसिंह के साथ यह बात पूर्णत: लागू हुई। वह बड़ा हँसमुख और तीव्र बुद्धि वाला था। जो भी उसे देखता, उससे दो चार बातें करता वह उसके गुणों पर मुग्ध हो जाता था।

पाँच वर्ष की अवस्था ही में उसके खेल भी अजीब थे। वह अपने साथियों को दो टोलियों में बाँट देता था, वे आपस में एक-दूसरे पर आक्रमण करके युद्ध का अभ्यास किया करते थे। भगतसिंह के हर कार्य से उसके वीर होने का आभास मिलता था।

एक बार सरदार किशनसिंह इस बालक को लेकर अपने

मित्र आनन्दकिशोर जी से मिलने लाहौर गये। उन्होंने इनका हृदय से स्वागत किया और बालक भगतसिंह से बड़े स्नेहपूर्वक बातें करने लगे—

"तुम्हारा क्या नाम है?" उन्होंने पूछा।

"भगतसिंह।"

"तुम क्या करते हो?"

"मैं बन्दूकें बेचता हूँ।" बालक ने बड़े गर्व से उत्तर दिया।

"बन्दूकें! ......"

"हाँ, बन्दूकें।"

"वह क्यों?"

"अपने देश भारत को स्वतंत्र कराने के लिये।"

"तुम्हारा धर्म क्या है?"

"देशभक्ति।"

आनन्दकिशोर जी बड़े राष्ट्रीय विचारों के पुरुष थे, उन्होंने बालक को बड़े प्रेम के साथ उठाकर गोदी में चिपटा लिया। वह उसकी बातों से बहुत प्रभावित हुए और सरदार किशनसिंह जी से बोले, "भाई! तुम बड़े भाग्यवान हो जो तुम्हारे घर में ऐसे होनहार बालक ने जन्म लिया है। मेरा आशीर्वाद है, यह बालक संसार में तुम्हारा नाम उज्ज्वल करेगा। देशभक्तों में इसका नाम अमर होगा।"

: २ :

लाहौर में

धीरे-धीरे समय बीतने लगा। बालक भगतसिंह को गाँव के प्राइमरी विद्यालय में पढ़ने के लिए भेजा गया। उसने पढ़ाई में पूरी-पूरी रुचि ली। वह पढ़ने के समय पढ़ता और खेलने के

समय खेलता था। अपने गुरुओं की आज्ञापालन में सदैव तत्पर रहता था। इस तरह अपनी तीव्र बुद्धि और अलौकिक प्रतिभा का परिचय देकर उसने वहाँ से चौथी कक्षा पास की। इसके बाद उसे लाहौर के खालसा स्कूल में भर्ती कराया गया।

सरदार किशनसिंह सच्ची राष्ट्रीयता के रंग में रँगे हुए थे। वह मातृ-भूमि के सच्चे उपासक थे। उनकी मनोकामना थी कि उनका पुत्र भी बड़ा होकर देश की सेवा का भार ग्रहण करे। उन्होंने देखा कि खालसा स्कूल की पढ़ाई बिल्कुल अंग्रेजी ढंग की और विद्यार्थियों को गुलामी के रंग में रँगने वाली है। वह इस बात को कब सहन कर सकते थे? उन्होंने भगतसिंह को वहाँ से हटाकर डी० ए० वी० स्कूल में भरती करा दिया। यहीं से उसने नवीं कक्षा पास की।

सन् १९२१ में महात्मा गांधी का असहयोग आन्दोलन आरम्भ हुआ। सारे देश में विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार किया गया। नगर नगर में घरों से निकाल कर विलायती कपड़ों की होलियाँ जलाई गईं।

उस समय के लोकमान्य तिलक, पंडित मोतीलाल नेहरू और देशबन्धु चितरंजनदास सरीखे बड़े-बड़े राष्ट्रीय नेताओं ने अनुभव किया, ब्रिटिश सरकार द्वारा स्थापित व सरकार द्वारा सहायता प्राप्त शिक्षा संस्थायें विद्यार्थियों को मानसिक दासता में जकड़ने वाली हैं। दूसरे रूप में यह गुलामोंको पैदा करने वाले कारखाने हैं। इसलिए इन शिक्षण संस्थाओं का बहिष्कार भी आवश्यक है। इन नेताओं द्वारा शिक्षा देने के लिए जगह जगह नेशनल कालिज स्थापित किये गये। लाहौर में भी पंजाबकेसरी लाला लाजपतराय ने नेशनल कालिज खुलवाया। इसके प्रिंसिपल देश-भक्त भाई परमान्द जी नियुक्त किये गये। सरदार किशनसिंह जी ने भी भगतसिंह को डी० ए० वी० कालिज से हटाकर नेशनल कालिज में भरती करा दिया।

भाई परमानन्द जी बड़े तपस्वी और देशभक्त थे। अपनी जवानी का बहुत बड़ा भाग वह मातृ-भूमि की सेवा में ब्रिटिश सरकार की काले पानी की कोठरी में बिता चुके थे। वह देश के गिने-चुने कर्मवीरों में से एक थे। उन्होंने थोड़ी-सी ही मौखिक परीक्षा में बालक भगतसिंह की प्रतिभा को पहचान लिया और उसे अपने यहाँ एफ० ए० में प्रवेश दे दिया।

इस तरह पंजाब केसरी लाला लाजपतराय और भाई परमानन्द जैसे तपे हुए वीर पुरुषों की छत्रछाया में शिक्षा प्राप्त हुए भगतसिंह का जीवन देश-भक्ति के साँचे में ढलने लगा। यहीं उसे सुखदेव और भगवती चरण जैसे सहपाठी मिले जिन्होंने एक दूसरे का साथ जीवन भर पूरी तरह से निभाया।

वैसे तो भगतसिंह बड़ा अध्ययनशील छात्र था। सभी विषयों में उसका बड़ा अच्छा ज्ञान था। किन्तु इतिहास और राजनीति उसके प्रिय विषय थे। उसकी अपने साथियों के साथ बातचीत भी अधिकतर इन्हीं विषयों पर हुआ करती थी।

भगतसिंह और उसके साथियों की टोली खेल-कूद, गान-विद्या और रंग-मंच पर अभिनय करने में भी पारंगत थी। उनके खेल वीरतापूर्ण होते थे। संगीत देश-प्रेम से ओत-प्रोत होता था। नाटक राष्ट्रीय भावना को जागृत करते थे।

एक बार विद्यालय में नाटक खेला गया। उसका विषय था—सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य के यौवन का ऊषा काल। उस समय वह सम्राट नहीं थे, केवल एक साधारण क्षत्रिय बालक थे। उन्होंने अपने गुरु चाणक्य के आदेश पर, सिकन्दर महान् की सेना में भरती होकर, शशिगुप्त के रूप में सैल्यूकस की देख-रेख में नये-नये अस्त्र-शस्त्र चलाने की शिक्षा ग्रहण करना आरम्भ कर दिया। वहाँ सैल्यूकस की पुत्री हैलन ने उसे अपने प्रेम-जाल में फँसाना चाहा। किन्तु उसने प्रेम से अधिक देश के प्रति अपने कर्तव्य को ही अधिक प्रमुखता दी। उसने सिकन्दर महान् को

सेना के एक-एक सिपाही से मिलकर उनके हृदय में मगध सम्राट और भारतीय वीरों का ऐसा सिक्का जमाया कि सिकन्दर की सेना ने स्पष्ट शब्दों में आगे बढ़ने से मना कर दिया। इस तरह सिकन्दर का 'विश्व विजय' करने का स्वप्न अधूरा ही रह गया और उसे विवश होकर अपने देश को लौट जाना पड़ा। आगे चल कर शशिगुप्त का यही कार्य सम्राट महापद्मनन्द को परास्त करके उसे सम्राट चन्द्रगुप्त बनाने में सहायक हुआ। फिर उसने संपूर्ण देश को एक केन्द्रीय शासन के अन्तर्गत करके एकता के सूत्र में बाँध दिया। इस तरह देश गुलामी से बचकर एक शक्तिशाली राष्ट्र बन गया।

इस नाटक में भगतसिंह ने शशिगुप्त की भूमिका का इतना सफल अभिनय किया कि दर्शकों के मुँह से अनायास वाह-वाह के शब्द निकल पड़ते थे। क्योंकि यह भूमिका उसके विचारों और उसके जीवन से, जिस साँचे में वह ढल रहा था, मिलती-जुलती थी। इसलिए यह केवल अभिनय ही नहीं था। उस भूमिका का एक-एक शब्द उसके हृदय का उद्गार बनकर निकल रहा था।

नाटक समाप्त होने के बाद सभी विद्यार्थियों, शिक्षकों और जनता के बड़े-बड़े लोगों ने उसको बधाइयाँ दीं। भाई परमानन्द जी ने बड़े प्यार से उनके सिर पर हाथ रखते हुए कहा, "मेरा भगतसिंह सचमुच ही इस युग का शशिगुप्त होगा।"

: ३ :

लाहौर से बाहर

कभी-कभी, छोटी-छोटी घटनायें भी घटकर जीवन में महान् परिवर्तन कर देती हैं। इसी तरह की एक घटना ने भगतसिंह की पढ़ाई बन्द कराकर उनसे घरबार छुड़वा दिया।

भगतसिंह के एक बड़े भाई भी थे जिनका नाम जगतसिंह था। ग्यारह वर्ष की आयु में ही उनका देहान्त हो गया। इस मृत्यु से सारे परिवार के हृदय पर गहरी चोट लगी। माता-पिता व दादी तो अत्यन्त दुःखी थे ही। भगतसिंह भी उदास रहने लगे।

किन्तु समय स्वयं एक मरहम है, धीरे-धीरे यह बड़े से बड़े घाव को भी भर देता है। जैसे-जैसे समय बीतता गया जगतसिंह की याद भी कम होती गई। अब माता-पिता और दादी की सारी आशायें भगतसिंह पर केन्द्रित थीं। दादी की बहुत बड़ी अभिलाषा थी, किसी तरह अपनी पौत्र-बधू का मुख देखें। इसीलिए भगतसिंह की पढ़ाई के दिनों में ही उसकी शादी पक्की कर ली गई।

जब भगसिंह को अपने विवाह का पता चला तो उन्होंने अपने पिताजी को लिखा—

पूज्य पिता जी !

यह समय विवाह का नहीं है। मातृ-भूमि मुझे पुकार रही है। मैं तन-मन-धन से उसकी सेवा का व्रत ले चुका हूँ। फिर हमारे लिए तो यह कोई नई बात नहीं। हमारा तो सारा परिवार ही इस रंग में रँगा हुआ है। मेरे जन्म के साल भर बाद ही, सन् १९०८ में, चाचा स्वर्णसिंह जेल में ही स्वर्ग सिधार गए ! चाचा अजीतसिंह जी विदेशों की खाक छानते फिर रहे हैं। स्वयं आपने भी जेलों में रहकर बड़े-बड़े कष्ट उठाए हैं। मैं तो केवल आप लोगों की परम्परा पर ही आगे बढ़ने का साहस कर रहा हूँ।

आप मुझे इस बन्धन में न बाँध कर, आशीर्वाद दीजिए कि जो व्रत मैंने लिया है, उसे सफलतापूर्वक निभा सकूँ।

भगतसिंह का पत्र पढ़कर सारे घर में खलबली मच गई। वृद्धा दादी अपनी आशाओं पर तुषारापात देख कर घबरा उठी। वह अपने पुत्र किशनसिंह जी से बोली, "बेटा ! जैसे भी हो

भगत की शादी करो।"

बेचारे किशनसिंह जी बड़ी दुविधा में पड़ गए। इधर माँ की आज्ञा, उधर बेटे का महान् कठोर व्रत। करें तो क्या करें? फिर बेटे का तो कोई अपराध नहीं था। उसे राष्ट्रीयता के रंग में रँगने की शिक्षा भी स्वयं उन्होंने ही दिलाई थी। अगर वह रंग अधिक गहरा हो गया तो यह बात भी उनके लिए दुःख की नहीं प्रसन्नता की ही थी।

किन्तु उनकी माँ अपनी जगह ठीक ही थीं। उनका भगत की शादी करने का अनुरोध भी उचित ही था। सभी लोग अपनी सन्तान को गृहस्थाश्रम में फलीभूत होते देखने की अभिलाषा करते हैं। फिर वह तो अपने दो पुत्रों और पौत्र से तो जीवन भर के लिए हाथ धो बैठी थीं। उनकी सारी आशाओं का आधार इस समय उनका प्रिय भगत ही था।

बहुत कुछ सोचने-विचारने के बाद सरदार किशनसिंह जी ने भगतसिंह को पत्र लिखा—

प्रिय भगतसिंह!

हमने तुम्हारे विवाह की बातें पक्की कर ली है। लड़की हमने देखी है, वह व उसका परिवार हमें पसंद है। मुझे और तुम्हें दोनों को ही, बुढ़िया दादी की भावनाओं का सम्मान करना चाहिए। इसलिए मेरी आज्ञा है कि तुम विवाह के लिए कोई अड़चन पैदा न करो और सहर्ष तैयार हो जाओ।

पिता का पत्र पढ़ कर भगतसिंह को बड़ी निराशा हुई। सोचते-सोचते उन्हें रात को नींद नहीं आती थी। अन्त में कई दिन और कई रात के लगातार मानसिक संघर्ष के बाद उन्होंने अपना मार्ग निर्धारित किया और पिताजी को पत्र लिख दिया—

पूज्य पिता जी!

आपका पत्र पढ़कर मुझे बड़ा दुःख व आश्चर्य हुआ। जब आप जैसे तपे हुए देशभक्त और धीर पुरुष भी छोटी-छोटी

बातों से विचलित हो सकते हैं तो साधारण मनुष्यों की तो बात ही क्या है ?

आप केवल दादी की भावनाओं के कारण चिन्तित हैं। किन्तु तेतीस करोड़ पुत्रों की माँ, हमारी भारतमाता कितनी दुःखी है ? उसका दुःख निवारण करने के लिए हमें सभी कुछ बलिदान करना पड़ेगा।

मैं जानता हूँ, मेरे यहाँ रहने से मुझे विवाह करने के लिए, तरह-तरह से विवश किया जायेगा। इसलिए मैं इस स्थान को छोड़ कर अन्यत्र कहीं जा रहा हूँ। आपके आशीर्वाद से एफ० ए० पास कर ही चुका हूँ। इसलिए आप कोई चिन्ता न करें, मैं अपना मार्ग स्वयं ही निर्धारित कर चुका हूँ। मैं आशा करता हूँ कि आपके आशीर्वाद और भगवान की कृपा से मुझे सफलता प्राप्त होगी।

साथ ही आपकी आज्ञा न मानने का भी मुझे अत्यन्त दुःख है किन्तु विवाह का बन्धन मेरे सारे कार्यक्रम को नष्ट कर देगा। इसलिए मैं विवश हूँ और आशा करता हूँ कि आप मेरी इस धृष्टता को क्षमा करेंगे।

आपका पुत्र
भगत

इसके बाद वह अपना सामान बाँधकर लाहौर से बाहर चले गए।

: ४ :

कानपुर में

लाहौर से चल कर भगतसिंह दिल्ली पहुँचे। वहाँ उन्होंने 'अर्जुन' नामक दैनिक पत्र में, बलवन्तसिंह नाम से, सम्वाददाता

का कार्य करना आरम्भ कर दिया। यद्यपि वह अपने इस काय का बड़ी रुचि और बुद्धिमत्तापूर्ण ढंग से निभा रहे थे। किन्तु दिल्ली में उनका मन नहीं लग रहा था। उनके हृदय में तो कुछ और ही अभिलाषायें थीं, वह उन्हें यहाँ पूरी होती न दिखाई पड़ीं। निदान वह विवश होकर यहाँ से भी नौकरी छोड़कर चल दिए।

उन दिनों कानपुर का दैनिक 'प्रताप' प्रसिद्ध देशभक्त गणेश शंकर विद्यार्थी जी की देख-रेख में चलता था। विद्यार्थी जी के यहाँ देशभक्तों का आना-जाना रहता था और आवश्यकता पड़ने पर वह हर प्रकार से उनका संरक्षण भी करते थे। भगतसिंह भी वहीं पहुँच गए और दैनिक 'प्रताप' में कार्य करने लगे।

भगतसिंह देखने में बड़े सुन्दर, स्वभाव के हँसमुख और बड़े परिश्रमी थे। जो भी एक बार उनसे मिलकर दो-चार बातें कर लेता, वह उनका सदैव के लिए मित्र बन जाता था। श्रद्धेय श्री गणेश शंकर विद्यार्थी भी इस होनहार युवक के गुणों पर लट्टू हो उसे हृदय से बड़ा प्यार करते थे।

यहीं पर एक बंगाली नवयुवक बटुकेश्वर दत्त से भगतसिंह का परिचय हुआ।। धीरे-धीरे उनमें आपस में घनिष्टता बढ़ती गई। दोनों ही समान आयु, एक से विचारों और समान उद्देश्य के व्यक्ति थे। इसलिए उनमें खूब गाढ़ी छनी और जीवन भर के लिए गहरे बन गए।

यह सन् १९२४ का समय था। उन दिनों गंगा और यमुना में भयंयर बाढ़ें आईं। गाँव के गाँव बह गए। हजारों लाखों पशुओं और मनुष्यों की जानें काल के कराल मुख में चली गईं। नदी किनारे के अन्य नगरों की तरह ही कानपुर भी बाढ़ पीड़ितों का एक केन्द्र बन गया था। इन दोनों मित्रों ने बाढ़ पीड़ितों की सेवा के लिए दिन रात एक करके, जी-जान से कार्य किया। केवल नगर में ही नहीं, गाँव-गाँव घूम कर, अपने आपको विपत्ति में डाल सैंकड़ों जानें बचाईं और हर प्रकार से उनकी सहायता की।

उन दिनों जिधर देखो उधर, कानपुर में और उसके आस-पास इन नवयुवकों की लगन और सेवाओं की प्रसंशा करते-करते लोग थकते नहीं थे। उसी बीच इन दोनों की भेंट चन्द्रशेखर आजाद से हो गई। इसके अतिरिक्त और कई नवयुवक इनसे आ मिले।

ये सभी नवयुवक साहसी और वीर थे। इन सबका उद्देश्य भारत से ब्रिटिश साम्राज्य को समाप्त करके देश को स्वतन्त्र कराना था। इनका जीवन भी बड़े त्याग और तपस्या का था। दिन भर तो ये बेचारे किसी न किसी तरह की मेहनत मजदूरी करके जीवनयापन का साधन जुटाते और रात्रि को कहीं गुप्त स्थान में बैठकर देश को आजाद करने की तरह-तरह की योजनायें बनाते थे।

कुछ दिनों बाद गणेश शंकर विद्यार्थी जी ने भगतसिंह जी को राष्ट्रीय विद्यालय का एक मुख्य अध्यापक बना दिया। उन्होंने अपने इस पद पर रहकर इतनी सफलता से कार्य को निभाया कि देखने वाले चकित रह जाते थे। सभी शिक्षक और विद्यार्थी इनके हँसमुख स्वभाव, योग्यता और गुणों पर मुग्ध थे। वे सभी इनकी हर आज्ञा मानने को तत्पर रहते थे।

किसी तरह इनके पिता सरदार किशनसिंह जी को पता लग गया कि भगतसिंह कानपुर हैं। एक दिन यह अपने विद्यालय के आफिस में कुछ काम कर रहे थे, तभी इन्हें पिता का तार मिला—"तुम्हारी माँ बहुत सख्त बीमार है। शीघ्र घर लौट आओ।"

भगतसिंह को अपने माता-पिता के प्रति बड़ी गहरी श्रद्धा थी। तार पढ़कर उन्हें जन्म-भूमि, स्वजनों की याद सताने लगी। वह तुरन्त ही अपने घर को चल पड़े। वहाँ पहुँच कर उन्होंने दिन-रात एक करके माता की सेवा की। वह कुछ ही दिनों में पूर्ण स्वस्थ हो गईं। किन्तु इसके बाद दादी और माता के अनुरोध पर वह कानपुर वापस न जा सके।

: ५ :

विचार प्रवाह

घर पर रहकर भगतसिंह का मन नहीं लगता था। वह दिन रात यही सोचा करते, "क्या ये लोग मुझसे विवाह के लिए फिर कहेंगे ? अगर ऐसा हुआ तो बहुत बुरी बात होगी।

माना कि विवाह भी एक संस्कार है और इसका विधिवत सम्पूर्ण होना भी आवश्यक ही है। किन्तु अपने-अपने जीवन का लक्ष्य भी तो होता है। मेरे जीवन का लक्ष्य सामान्य लोगों की भाँति गृहस्थ में फँसना नहीं है। मेरे सम्मुख तो परतन्त्रता की बेड़ियों में जकड़ी हुई भारतमाता को स्वतन्त्र कराने का ध्येय है। जब तक हमारे सिर पर हमारी शत्रु ब्रिटिश सरकार मौजूद है, मुझे विवाह करके उसके कर्त्तव्यों को पूरा करने का अवकाश ही कहाँ है ? हमें तो बन्दूक की गोलियों और बम्बों से खेलना है। अपनी जान हथेली पर लेकर आगे बढ़ना है। न जाने कब मृत्यु से सामना करना पड़ जाए ?"

कभी मन को विश्वास सा होता—"नहीं ! पिताजी बहुत समझदार हैं। वह मुझसे और मेरे विचारों से बहुत कुछ परिचित हैं। अब वह विवाह का प्रश्न कभी नहीं उठने देंगे।

आज मैं जो कुछ भी हूँ और जो बनना चाहता हूँ, यह सब उन्हीं की कृपा और आशीर्वाद का ही फल है। वह स्वयं एक तपे हुए देश-भक्त हैं। उनकी इच्छा थी, मैं देश-भक्ति का जामा पहनूँ। इसीलिए तो उन्होंने मुझे भाई परमानन्द सरीखे तपस्वी और देश-भक्त का शिष्य बनाया। आज वह अपनी इच्छा को पूरा होते हुए देखकर कभी अप्रसन्न नहीं हो सकते। बल्कि उन्हें तो इस पर गर्व ही होगा।

"पर मैं इस तरह घर पर पड़ा-पड़ा क्या करूँ ? उधर मेरे साथी बटकेश्वरदत्त और चन्द्रशेखर आजाद तरह-तरह की

योजनायें बना रहे होंगे। अब उन्होंने अपना केन्द्र बनारस बनाया है। उन्हें रामप्रसाद 'बिस्मिल' सरीखे वीर क्रान्तिकारी का नेतृत्व प्राप्त है। धन्य हैं वे लोग जिनका एक-एक क्षण देश के हित में सोचते हुए व्यतीत होता है।

"इधर सन् १९२० के बाद से पंजाब में क्रान्तिकारियों का कार्य बहुत ढीला पड़ गया है। सुनते हैं, यदि उस समय भारतीय क्रांतिकारियों की योजना सफल हो गई होती तो ब्रिटिश साम्राज्य जड़ से उखाड़कर फेंक दिया गया होता। सारे उत्तरी भारत में क्रांतिकारियों का जाल-सा बिछा हुआ था। लाहौर, बनारस, पटना और कलकत्ता हमारे प्रमुख केन्द्र थे। बंगाल के क्रान्तिकारियों ने स्पष्ट कह दिया था कि ब्रिटिश सरकार की जितनी सेना और पुलिस बंगाल में है, उसके लिये हम काफ़ी हैं। बाहर से मदद आ जाने पर शायद हम असफल हो जायें।

इसके लिये जगह-जगह रेलवे पुलों को उड़ाने के लिये 'डायनामाइट' लगाने की योजना बना ली गई जिससे कि सरकार एक जगह से दूसरी जगह सेना को सहायता न पहुँचा सके।

बनारस केन्द्र के अध्यक्ष श्री रासबिहारी बोस स्वयं थे। उन्होंने भी उत्तर प्रदेश में सरकार से टक्कर लेने की पूरी-पूरी तैयारी कर ली थी। लाहौर में भी बड़ी तैयारियाँ थीं। क्रान्ति का सूत्र-पात यहीं से आरम्भ होने वाला था।

किन्तु दुःख की बात है, सरकार के खुफिया विभाग के कुछ लोग लाहौर केन्द्र के क्रान्तिकारियों से मिले हुए थे। उन्होंने क्रान्ति के निश्चित समय से चौबीस घंटे पहले ही सरकार को सारी योजना बतला दी। जगह-जगह छापे मारे गये। क्रान्तिकारी बन्दी बना लिये गये। उनका अस्त्र-शस्त्र का भंडार भी सरकार के हाथों लगा।

इससे सिद्ध होता है कि ब्रिटिश सरकार अपने बल-बूते पर

भारत में राज्य नहीं कर रही है। उसने कुछ भारतवासियों को ऐसी मानसिक दासता की बेड़ियाँ पहना रखी हैं कि वे सरकार की वफ़ादारी के अतिरिक्त अपने देश और समाज का कोई हित सोच ही नहीं सकते।

इसी तरह सन् १८५७ में भी जाति-पाँति का भेद भुला कर सभी भारतवासी एक मत से अंगरेजों को भारत से उखाड़ फेंकने के लिये तत्पर थे। किन्तु उस समय भी निज़ाम हैदराबाद और महाराज ग्वालियर सरीखे देश-द्रोहियों ने अंगरेजों की सहायता करके उन्हें भारत में रोक लिया।

यदि उस समय कुछ देशद्रोही अंगरेजों से न मिल गये होते तो भारतवासियों की विजय निश्चित थी। तब १८५७ का विद्रोह, विद्रोह न कहलाकर भारत की राज्यक्रान्ति के नाम से विश्व के इतिहास में प्रसिद्ध होता।

अब हमारे देश के नेताओं को क्या सूझी है? वे चर्खे और अहिंसा के बल पर स्वराज्य लेने की कल्पना कर रहे हैं। यह सब व्यर्थ की बातें हैं। इससे जन साधारण में जागृति तो अवश्य हो सकती है किन्तु बिना शक्ति का प्रयोग किये हुए अंगरेज़ भारत से कभी नहीं उखड़ सकते।

यदि भारत को स्वतंत्र कराना है तो हमें शक्तिशाली बनना चाहिये। थप्पड़ का जवाब घूँसे से देना चाहिये।

अब भारतवासी पहले जैसे नहीं रहे हैं। उन्होंने अपने अधिकार को पहिचान लिया है। अब देश के बच्चे-बच्चे में जागृति उत्पन्न होने वाली है। उधर हमारे दल के लोग रामप्रसाद बिस्मिल, चन्द्रशेखर आजाद, बटुकेश्वरदत्त आदि बड़ी ऊँची योजनायें बना रहे हैं। भगवान उन्हें सफलता दे। अब हम सन् १९२० के से विश्वासघात में नहीं आयेंगे।

किन्तु मैं···मैं अब क्या करूँ? घर वाले चाहते हैं, मैं पंजाब छोड़ कर कहीं बाहर न जाऊँ।······न सही······इसमें भी कोई

बात नहीं है। देश-सेवा ही तो करना है। यू० पी० न सही, पंजाब ही सही।

……और सच देखा जाये तो इस समय पंजाब में ही रहने की अधिक आवश्यकता है। क्योंकि उधर तो वे सब लोग काम कर ही रहे हैं। इस समय यहाँ का संगठन कुछ ढीला पड़ रहा है। उसमें गति लाने की आवश्यकता है……"

इसी तरह सोचते-सोचते उनके चेहरे पर नई आशा झलक उठी। वह इस तरह गुनगुनाते हुए उठ कर चल दिये :—

ऐ मादर हिन्द न हो गमगीं,
दिन अच्छे आने वाले हैं।
आज़ादी का पैग़ाम तुझे,
हम जल्द सुनाने वाले हैं।

: ६ :

सत्याग्रही जत्था

आज बंगा ग्राम में बड़ी चहल-पहल थी। जगह-जगह शर्बत की प्याऊ लग रही थीं। खाने के लिये लंगर खुल रहे थे। सभी के चेहरे पर एक अजीब उत्साह दिखाई पड़ रहा था। कुछ कायर लोग मन में भयभीत भी थे किन्तु ऊपर से वह भी उत्साह दिखाने का प्रयत्न कर रहे थे। भगतसिंह जी को दम मारने की भी फ़ुर्सत नहीं थी। यह सब आयोजन उन्हीं की योजना और परिश्रम का फल था। उनके इशारे पर ही गाँव के नवयुवक बड़ी फ़ुर्ती से काम कर रहे थे।

उन दिनों पंजाब में 'गुरु का बाग' नामक सत्याग्रह की बड़ी धूम थी। पंजाबी नवयुवकों की टोलियों की टोलियाँ सिर से

Acc. No. 77931

कफन बाँध कर सत्याग्रह करने जा रही थीं।

उधर क्रूर अंगरेज़ सरकार की दमन नीति भी अपनी चरम सीमा पर थी। सत्याग्रहियों से जेलें भरी जा रही थीं। उन पर तरह-तरह के अत्याचार किये जा रहे थे। गाँव-गाँव में यह घोषणा करा दी गई थी कि जो भी इन सत्याग्रहियों को आश्रय या किसी भी प्रकार की सहायता देगा, उसे सरकार कड़ा दंड देगी।

सरदार किशनसिंह जी को पता चला कि सत्याग्रहियों का एक जत्था उनके ग्राम बंगा में होकर जाने वाला है। उन्होंने अपने पुत्र भगतसिंह को आज्ञा दी कि जत्थे का समुचित स्वागत किया जाये।

आज्ञाकारी पुत्र ने पिता की आज्ञा का पालन किया। यह सब तैयारी उसी जत्थे के स्वागत के लिये की गई थी। बंगा ग्राम के निवासी पहले तो सरकार के डर से भयभीत हुए। उनका साहस जत्थे के स्वागत करने का नहीं हुआ। किन्तु भगतसिंह की मधुर वाणी में वह जादू था कि जिसके सामने ना करने वालों को भी हाँ करनी पड़ी। उनके एक छोटे से भाषण ने सारे ग्रामवासियों में उत्साह भर दिया। उनके हृदय से सरकारी दंड का भय जाता रहा।

इधर सब लोग स्वागत करने के लिए तैयार खड़े थे। उधर जत्था ग्राम के समीप आया। जत्थे के लोग मस्ती से गाते चले आ रहे थ—

"सिर से कफ़न बाँध के शहीदों की टोली चली
......................"

ग्राम से आवाज़ उठी, "जय सत श्री अकाल।" प्रत्युत्तर में जत्थे का गाना वन्द हो गया और नारे की आवाज़ आई, जय सत श्री अकाल"।

गाँव का हर परुष जत्थे के एक-एक व्यक्ति से गले मिला।

स्त्रियों व बच्चों ने फूलों की वर्षा की। जत्थे के लोगों को अच्छे-अच्छे भोजनों से तृप्त किया गया। केवल इतना ही नहीं, उन्हें नये-नये वस्त्र पहिनाये गए और चलते समय एक सौ एक रुपये का थैली भेंट की गई और ग्राम के कुछ नवयुवक भी सत्याग्रह करने के लिए उस जत्थे में सम्मिलित हो गए।

भगतसिंह स्वयं उनके साथ नहीं गए। क्योंकि उनके सामने केवल एक गुरुद्वारा नहीं था। उन्हें तो देश के कोने-कोने से हर मन्दिर, मस्जिद और गुरुद्वारे से आवाज़ें आ रही थीं। मातृभूमि का कण-कण उन्हें पुकार रहा था। उनकी आँखों में धर्म से भी बढ़कर राष्ट्रीयता नाच रही थी।

: ७ :

परीक्षा

लाहौर में भी उन दिनों एक छोटा-सा क्रान्तिकारी दल सक्रिय था। वह तरह-तरह के बम्ब और हथियार बनाकर दल के दूसरे केन्द्रों पर भेजा करता था। उसके अध्यक्ष एक बंगाली सज्जन थे।

एक दिन उनके दल का एक आदमी अपने साथ एक सोलह वर्ष के नवजवान को लेकर आया और अध्यक्ष महोदय से बोला, "यह नौजवान हमारे दल में भरती होना चाहता है।"

अध्यक्ष ने उस नये आने वाले की ओर देखा—फूल सा कोमल व सुन्दर मुखड़ा था। ऊपर के होंठ पर छोटी-छोटी मुलायम रेखें उभर आई थीं जो अभी पूर्ण यौवन के आगमन की सूचना दे रही थीं।

"तुम्हारा क्या नाम है?" अध्यक्ष ने पूछा।

"सरदार भगतसिंह" नवयुवक ने दृढ़ता से उत्तर दिया।

अध्यक्ष के चेहरे पर मुस्कराहट बिखर गई। उन्होंने दूसरा प्रश्न किया, "यहाँ क्यों आये हो ?"

"देश सेवा के लिए दल में भरती होने को।"

"प्रिय नौजवान ! यह बच्चों का खेल नहीं है। यहाँ हथेली पर जान लेकर चलना पड़ता है। मौत सामने मुंह फाड़े खड़ी रहती है। कभी-कभी बम्बों और गोलियों की चोटें भी सहन करनी पड़ती हैं। नंगे भूखे रह कर त्याग का जीवन बिताना पड़ता है। यह मार्ग बहुत कठिन है, तुम अपने घर लौट जाओ।"

"मैं सब कुछ सहन करने के लिए ही यहाँ आया हूं।"

"क्या खूब सोच-विचार लिया है।"

"हाँ ! खूब सोच लिया है।"

"तो तुम्हें पहले इसके लिए परीक्षा देनी होगी।"

"कैसी परीक्षा ?"

"तुम्हारे अन्दर कष्ट सहन करने की शक्ति है भी या नहीं ?"

भगतसिंह के चेहरे पर हँसी आ गई। उन्होंने तनिक इधर उधर देखा और अध्यक्ष से बोले, "जरा अपना पैर आगे बढ़ाइये।"

अध्यक्ष ने अपना पैर आगे बढ़ा दिया। भगतसिंह ने अपना पैर उनके पैर पर रखा और पास रखा एक भाला उठा कर अपने पैर में जोर से दे मारा। भाला उनके और ध्यक्ष के पैर को पार कर गया और उसकी नोक एक इंच जमीन में घुस गई। अब तो अध्यक्ष जी दर्द के मारे कराह उठे।

किन्तु भगतसिंह ऐसे हँस रहे थे जैसे कुछ हुआ ही नहीं हो। वह बोले, "अरे मेरा पैर तो आपके पैर से ऊपर है। भाले की नोक ने मेरे पैर को अधिक पार किया है। आपके पैर में तो उसका बहुत थोड़ा-सा ही भाग घुसा है। फिर भी आप दर्द से कराह रहे हैं। मुझे तो कुछ भी मालूम नहीं हो रहा।"

पृथ्वी पर खून की धारें बह रही थीं। अध्यक्ष दर्द के मारे बेहाल हुए जा रहे थे। भगतसिंह ने पैर से भाला खींचकर निकाल लिया और हँसते हुए एक ओर जा बैठे।

दोनों के पैरों की मरहम पट्टी होने के बाद अध्यक्ष ने भगतसिंह को अपने पास बुलाया और उनकी पीठ ठोंककर कहा, "शाबाश नवयुवक! वास्तव में तुम सरदार हो। तुम्हारे जैसे वीरों के मुख की ओर ही भारतमाता निरख रही है।"

उसी दिन से भगतसिंह, सरदार भगतसिंह कहलाने लगे उनके पैर का घाव ठीक होने में पूरे छः महीने लगे।

सरदार भगतसिंह एकान्त में बैठे उपर्युक्त घटना के विषय में विचारते हुए मुस्करा रहे थे। यह घटना उनके जीवन में लाहौर छोड़ने से पहले सन् १९२३ में घटी थी।

"आज भी मेरे पैर में उस भाले का निशान मौजूद है। शायद जीवन भर ही रहेगा भी?

लाहौर केन्द्र में जो भी कार्यकर्ता हैं वे अपनी जगह ठीक हैं। किन्तु इतने थोड़े से लोगों से कोई विशेष प्रगति होने की आशा नहीं की जा सकती। इसलिए पंजाब में संगठन की अधिक आवश्यकता है।"

फिर वह संगठन के विषय में विचार करते-करते भविष्य की योजनायें बनाते रहे।

: ८ :

नौजवान भारत सभा

सन् १९२४ में नवम्बर का महीना था। सर्दी पर्याप्त रूप से पड़ने लगी थी। लायलपुर नगर के बाहर मैदान में बीसों तम्बू गड़े हुए थे। बीच में शामयाना लग रहा था, जिसके ऊपर

केसरिया झण्डा हवा में फहराता हुआ अपनी अनोखी छटा दिखा रहा था। जगह-जगह से पंजाबी नवयुवकों की टोलियाँ यहाँ आ कर जमा हो रही थीं। सभी के चेहरे पर नया उत्साह और आशा की नई झलक दिखाई पड़ रही थी।

आज 'आज नौजवान भारत सभा' का पहला अधिवेशन था। उस सभा की स्थापना सरदार भगतसिंह ने अपने कई साथियों के सहयोग से की थी। उनका विचार था कि भारत को अंग्रेजों से स्वतन्त्र करने के लिए केवल चर्खे या अहिंसा से काम नहीं चल सकता। इसके लिए शक्तिशाली नवजवान खून की आवश्यकता है, जो सिर से कफ़न बाँधकर आगे बढ़े और अंग्रेजों से खुली टक्कर ले। यही इस सभा क उद्देश्य था।

दिन के लगभग दस बजे सभा का अधिवेशन प्रारम्भ हुआ। सरदार भगतसिंह ने बड़ा जोशीला भाषण देते हुए कहा है—

"भाइयो!

आज हमारे देश में दरिद्रता का तांडव नृत्य हो रहा है। लोग बेकारी और भूख से मर रहे हैं। ब्रिटिश शासन के अत्याचार अब हमारी सहनशक्ति की सीमा को पार कर चुके हैं। जिस तरह से भी हो, उसी तरह हमें इस विदेशी अत्याचारी शासन को जड़ से उखाड़कर फेंक ही देना है।

ए राम और कृष्ण की संतानो! अब भी समय है, जाग उठो। जिस मातृभूमि को महाराणा प्रताप, छत्रपति शिवाजी, गुरु गोविन्दसिंह और हरीसिंह नलुआ जैसे सैंकड़ों देशभक्तों ने अपना रक्त दे देकर सींचा था, आज वही मातृभूमि नवयुवकों का बलिदान चाहती है। आज देश को ऐसे माई के लालों की आवश्यकता है जो दुःखों से तड़पती हुई जननी जन्मभूमि पर अपने प्राणों को निछावर कर दें। बोलो! तुम लोगों में से कौन-कौन हैं जो भारतमाता के बन्धनों को तोड़ डालने के लिए शहीद होना चाहते हैं?"

"हम तैयार हैं, हम पर मिटेंगे, मातृभूमि के दुःख मिटाकर रहेंगे।" इस तरह के नारों से सारा वातावरण गूंज उठा। नवयुवकों के हृदय में जोश था। उत्साह से उनका रोम-रोम फड़क रहा था।

उन लोगों की ओर देखकर सरदार भगतसिंह के आनन्द की सीमा न थी। उन्होंने सबको शान्त करते हुए आगे कहा, "भाइयो ! ये काम केवल बातों से नहीं हुआ करते। इसके लिये रक्त चाहिए। इसलिये सबसे पहले प्रतिज्ञा-पत्र पर अपने-अपने रक्त से हस्ताक्षर करने होंगे।"

सरदार भगतसिंह ने उसी समय अपना हाथ चीरकर कलम को रक्त में भिगोया और प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर किये। उनके बाद सुखदेव और भगवतीचरण ने भी वैसा ही किया। फिर एक-एक करके चार हस्ताक्षर और हुए। यह कठिन परीक्षा देखकर कायर हृदय लोग वहाँ से खिसकने लगे।

फिर सभा की कार्यकारिणी और प्रचार समिति आदि कमेटियाँ बनाई गईं। सरदार भगतसिंह को सर्वसम्मति से नेता चुना गया।

इस सभा का सदस्य बनने की फीस चार आने मासिक और एक रुपया वार्षिक रखी गई। उसी समय फीस के सैकड़ों रुपये जमा हो गये। वहाँ आने वाले सभी लोग 'नौजवान भारत सभा' के लिए सफलता की मंगल कामना करते हुए अपने-अपने घरों को गये।

कुछ दिनों में ही 'नौजवान भारत सभा' का प्रचार बड़े जोर-शोर से आरम्भ हो गया। नवयुवकों की टोलियाँ की टोलियाँ नगर-नगर और ग्राम-ग्राम में जाकर इसके उद्देश्यों का प्रचार करती थीं। वे बड़े मार्मिक शब्दों में देश के लोगों की करुण कहानियों और अंग्रेजी शासन के अत्याचारों का चित्र खींचते थे।

सुनने वालों के हृदय पसीज जाते और उनकी आँखों से आँसुओं की धारायें बह निकलती थीं। नौजवानों का रक्त खौल उठता और वे मातृभूमि पर तन, मन, धन निछावर करने के लिए 'नौजवान भारत सभा' में सम्मिलित हो जाते थे। सारे पंजाब में इसकी सैंकड़ों शाखायें खुल गईं।

'नौजवान भारत सभा' की प्रगति और उसके उद्देश्यों को सुनकर सरदार भदतसिंह अंग्रेजों की आँखों का काँटा बन गए। ब्रिटिश सरकार उनके हर कार्य और गतिविधियों पर निगाह रखने लगी।

"एक दिन लायलपुर नगर में इस सभा की ओर से एक बड़ी भारी सभा की गई। इसमें सरदार भगतसिंह का जनता के सम्मुख बड़ा ओजस्वी भाषण हुआ। उन्होंने बताया—

"किस तरह ब्रिटिश नौकरशाही सरकार हमारे देश का रक्त चूस रही है? किस तरह सरकारी अत्याचारों से पड़ित होकर जनता त्राहि-त्राहि कर रही है? देश में बेकारी और भुखमरी का नंगा नाच हो रहा है। अब हम लोग इस सरकार से बहुत तंग आ चुके हैं।

उन्होंने उन क्रान्तिकारी वीरों की बहुत प्रशंसा की, जिन्होंने अत्याचारी अंग्रेजों को गोली से उड़ा दिया और स्वयं फाँसी के तख्ते पर चढ़ गये।

उन्होंने जनता को यह भी बताया कि यदि इस नौकरशाही सरकार के पिट्ठू भारतीय देशद्रोहियों ने क्रान्तिकारी वीरों के साथ विश्वासघात न किया होता तो १६२० में ही अंग्रेज भारत से उखड़ गये होते। आज उनका कोई नाम लेने वाला भी यहाँ न होता।

अन्त में उन्होंने कहा, "अब तक जो कुछ हुआ सो हुआ। अब तो सम्भल जाओ। देश से इन अत्याचारी अंग्रेजों को निकाल बहार करो।"

जनता पर इस भाषण का बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। किन्तु अंग्रेजी सरकार जल-भुनकर खाक हो गई। वह इस अवसर की ताक में रहने लगी कि कब सरदार भगतसिंह को पकड़ कर जेल में बन्द कर दे। भगतसिंह जी के कुछ हितैषियों ने अनुरोध करके उन्हें कुछ दिनों के लिए पंजाब से बाहर भेज दिया। वह सीधे कानपुर पहुँचे। किन्तु सरकारी गुप्तचर अब भी बराबर उनका पीछा करते रहे।

सरदार भगतसिंह कानपुर में आये तो इस विचार से थे कि क्रांतिकारी दल का कुछ कार्य करेंगे। किन्तु अपने पीछे गुप्तचरों को देखकर उन्होंने सोचा, "इस तरह मेरे यहाँ रहने से तो क्रान्तिकारी दल को लाभ होने की अपेक्षा कुछ हानि ही पहुँचने की सम्भावना है। इसलिए उन्होंने वहाँ दल के किसी विशेष कार्यक्रम में कोई भाग नहीं लिया। केवल अपने मित्रों से मिलकर वह बेलगाँव में काँग्रेस का अधिवेशन देखने चले गये।

इसके बाद कुछ दिनों इधर-उधर घूम-फिरकर वह पंजाब लौट आये। यहाँ अमृतसर में रहकर 'अकाली' पत्र का सम्पादन करने लगे। किन्तु ब्रिटिश सरकार को जिस किसी से भी एक बार भय हो जाता था, वह व्यक्ति सदैव उसकी आँखों में खटकता रहता था। उसने अब भी इनके पीछे अपने गुप्तचर लगा रखे थे। पुलिस कोई-न-कोई बहाना इन्हें गिरफ्तार करने का ढूंढती ही रहती थी।

इधर सरदार भगतसिंह तो निर्भय प्रकृति के थे ही। वह इन बातों से कब डरने वाले थे? उन्होंने अपने पत्र 'अकाली' में सरकार के विरुद्ध कई लेख लिखे और कई बार आलोचनायें कीं।

अन्त में पुलिस ने इनके विरुद्ध कई झूठे-सच्चे आरोप लगा कर इन्हें बन्दी बना लिया। कई महीने मुकदमा चला। पुलिस का कोई आरोप सही सिद्ध न हो सका। फिर भी अदालत ने छः हजार रुपये की जमानत लेकर ही रिहा किया।

: ६ :

रामलीला

सन् १६२६ में अक्टूबर का महीना था। लाहौर में अन्य वर्षों की भाँति इस वर्ष भी रामलीला का समारोह बड़ी धूम-धाम से मनाया जा रहा था। भगवान राम की सवारी निकलने वाली थी। नगर की गली-गली और बाजार-बाजार में दर्शनों के लिए भीड़ जमा थी। सड़कों और चौराहों पर रास्ता चलना कठिन हो रहा था। मकानों और दूकानों की छतें स्त्रियों और बच्चों की भीड़ से भरी पड़ी थीं।

भगवान की सवारी नगर के प्रमुख बाजार अनारकली में पहुँची। हज़ारों दर्शकों की भीड़ उमड़ी पड़ रही थी। भक्त लोग बड़ी श्रद्धा से भजन गाते हुए भगवान की आरती उतार रहे थे।

यकायक एक बड़े जोर का धमाका हुआ। भगवान की सवारी से कुछ गजों की दूरी पर ही किसी ने एक बम्ब फेंक दिया था। चारों ओर भगदड़ मच गई। घटना-स्थल के आस-पास बड़ी चिल्ल-पुकार हो रही थी। वहाँ कई आदमी घायल होकर गिर पड़े थे। सब रंग में भंग हो गई।

इतना सब होने पर भी सरकार ने अपराधी का पता लगाने का कोई प्रयत्न नहीं किया। इससे नगर के बड़े-बड़े हिन्दुओं को बहुत दुःख हुआ। उन्होंने डिप्टी कमिश्नर के बँगले पर जाकर सरकार से माँग की कि वह अपराधी को खोज निकाले और उसे कड़ा दंड दे।

सरकार से अपराधी का कोई पता न लग सका। उसने इसका बहाना लेकर कई निर्दोष देश-भक्तों को, जो कि उसकी निगाह में खटक रहे थे, जेल में बन्द कर दिया।

पुलिस इसी मामले में सरदार भगतसिंह को भी घसीटना चाहती थी। चुपके-चुपके उनकी भी खोज की जाने लगी।

वह एक सड़क पर खड़े हुए अपने मित्रों से बड़े आनन्दपूर्वक बातें कर रहे थे। अचानक ही कुछ पुलिस वालों ने उन्हें आकर घेर लिया। भगतसिंह जी का स्वभाव जन्म से ही बड़ा हंसमुख था। उन्होंने बड़ी-से-बड़ी विपत्ति में मुस्कराना ही सीखा था। फिर यह तो उनके लिए बहुत ही साधारण बात थी। वह हँसकर बोले, "क्यों भाई! क्या बात है?"

"आपका वारन्ट है। हम आपको गिरफ्तार करने आये हैं।" पुलिस इन्सपेक्टर ने कहा।

सरदार भगतसिंह ने उसी तरह हँसते हुए एक चुटकी ली, "क्या सरकार के पास और कोई काम ही नहीं रहा, जो मेरे जैसे साधारण आदमी को पकड़ने के लिए इतनी दौड़-धूप कर रही है?"

पुलिस इन्सपेक्टर ने इस बात का कोई उत्तर नहीं दिया। वह मन-ही-मन इस नवयुवक की जिन्दादिली की प्रशंसा करता रहा। उसने चुप से आगे बढ़कर उनके हाथों में हथकड़ियाँ डाल दीं और पुलिस की मोटर में बिठाकर ले गया।

उन्हें न्यायालय में प्रस्तुत करके पुलिस ने उनके विरुद्ध बड़े-बडे आरोप लगाये। पुलिस के वकील कोट इन्सपेक्टर ने कहा, "सरकार! यह वही युवक है जिसने अंग्रेजी शासन के विरुद्ध बड़े कारनामे किये हैं। इसका सारा-का-सारा परिवार ब्रिटिश साम्राज्य का शत्रु है। इसी ने रामलीला के जलूस में बम्ब फेंक कर जनता में भय उत्पन्न कर दिया है। इस तरह अनुशासन भंग करने वाले सरकार के शत्रु को कठोर-से-कठोर दण्ड मिलना चाहिए।"

पुलिस अधिकारियों ने हर प्रकार से हाथ-पाँव फेंके। बड़े-बड़े सबूत इकट्ठे किये। फिर भी वे भगतसिंह जी पर लगाये

गये आरोपों में से एक भी आरोप सही सिद्ध न कर सके। किन्तु इतने पर भी सरकार इन्हें छोड़ना नहीं चाहती थी।

अन्त में नगर के बड़े-बड़े प्रतिष्ठित लोगों ने सरकार से माँग की और कहा कि जिस व्यक्ति पर कोई अपराध सिद्ध ही नहीं हो पा रहा है उसे छोड़ देना चाहिए। तब सरकार ने विवश होकर डरते-डरते, एक वर्ष के लिए साठ हजार रुपये की जमानत लेकर उन्हें छोड़ा।

: १० :

शहीद दिवस

विधाता की गति को कोई नहीं जानता, जीवन में कब और कैसे उतार-चढ़ाव आयें? मनुष्य करना कुछ चाहता है किन्तु करना कुछ और पड़ जाता है। सरदार भगतसिंह ने जेल से छूट कर सन् १९२७ में लाहौर में एक 'डेरी फार्म' खोला। नगर के लोगों को शुद्ध दूध बेचने का प्रबन्ध किया गया। उसके ग्राहक बहुत संतुष्ट थे। आरम्भ में ही लाभ होना आरम्भ हो गया।

किन्तु भगतसिंह का जन्म केवल दूध बेचने के लिए ही नहीं हुआ था। उनके सामने तो बड़े-बड़े महान् उद्देश्य थे। उन्हें देश के लिए बड़े-बड़े कार्य करने थे। इसलिए उनका मन व्यापार में नहीं लगता था। क्रांतिकारी दल से उनका सम्बन्ध उसी तरह बना रहा। उन्हें अक्सर दल की गुप्त मीटिंगों में और उसके कार्य के लिए बाहर जाना पड़ता था। इससे उनके डेरी फार्म के व्यापार को बहुत धक्का लगा और लाभ की बजाय हानि होना आरम्भ हो गई। उन्होंने किसी तरह एक वर्ष तक तो डेरी के काम को खींचा। अन्त में उसे बन्द करके दल के काम में पूरा समय देने लगे।

उन दिनों देश के कोने-कोने में काकोरी केस की बड़ी धूम थी—९ अगस्त, सन् १९२५ को क्रांतिकारी दल के रामप्रसाद 'बिस्मिल', चन्द्रशेखर आज़ाद, अशफाकउल्ला खाँ आदि दस वीरों ने, लखनऊ के पास काकोरी स्टेशन पर ८ डाउन कलकत्ता मेल से, सरकारी खजाना लूट लिया था। इसके बाद पुलिस ने बड़ी सरगर्मी से क्रांतिकारियों की खोज की और वे पकड़े गये। आज़ाद को पुलिस न पकड़ सकी। इन वीरों के विरुद्ध डेढ़ वर्ष तक मुकद्दमा चला। श्री गोविन्दबल्लभ पंत और चन्द्रभानु गुप्त सरीखे कांग्रेसी लोगों तक ने इस मुकद्दमे की पैरवी की। किन्तु सब व्यर्थ रहा। अन्त में सरकार ने श्री रामप्रसाद बिस्मिल, अशफाकउल्ला खाँ और उनके दो अन्य साथियों को फाँसी का दंड सुना दिया।

सरकार के इस अत्याचार को लेकर लोग उसकी आलोचना करते थे। हर व्यक्ति की जबान पर इसी की चर्चा थी। नगर-नगर में इसके विरोध में सभायें और हड़तालें की जा रही थीं। लाहौर में ब्रेडला हाल में नवयुवकों ने एक 'विद्यार्थी संघ' की स्थापना की। इस संघ का उद्देश्य भी नवयुवकों में देशभक्ति की भावना जागृत करना था।

अन्त में इन चारों शहीदों के बलिदान का दिन आ पहुँचा। देश ने बेबसी के आँसू ढलका कर इन वीरों को अन्तिम श्रद्धांजलि अर्पित की। विद्यार्थी संघ ने ब्रेडला हाल में शहीद दिवस मनाया। वहाँ सरदार भगतसिंह ने मैजिक लालटेन से क्रांतिकारी नेता रामप्रसाद बिस्मिल की जीवन कहानी बड़े मार्मिक ढंग से लोगों को सुनाई। सुनने वालों की आँखों से गंगा-यमुना की धारायें बह रही थीं।

इसी तरह अन्य शहीदों के भी स्मृति-दिवस वहाँ मनाये गए। उनकी भी त्याग, तपस्या और कर्मवीरता की कहानियाँ लोगों ने सुनीं। इससे जनता के हृदय में अंग्रेजी राज्य के प्रति क्रोध और घृणा की भावना भड़कने लगी।

वैसे 'नौजवान भारत सभा' का बाहरी रूप तो बड़ा शान्त दिखाई पड़ता था किन्तु वास्तविकता यह थी कि इसके कार्यकर्त्ता अंग्रेजी राज्य के विरुद्ध आग के शोले उगलते थे। लेकिन सरकार का गुप्तचर विभाग तो बड़ी पैनी निगाह रखता था। इसी के बल पर तो अंग्रेजी सरकार यहाँ जमी हुई थी। इस विभाग को सभा के कार्यों पर संदेह हुआ। उसने अपने कई गुप्तचर 'नौजवान भारत सभा' के सदस्य बना दिये। वे यहां का पूरा भेद जानने के लिए ऊपर से देशभक्ति की बड़ी-बड़ी डींगें हांका करते थे।

सरदार भगतसिंह की भी बुद्धि बड़ी तीव्र थी। वे अन्य लोगों को अच्छी तरह ताड़ रहे थे। अन्त में उन्होंने इन नकली सदस्यों से पीछा छुड़ाने का एक उपाय ढूंढ़ निकाला—एक दिन उन्होंने छः मोमबत्तियाँ मँगवाई और एक दूसरे के साथ-साथ खड़ी करके जला दीं। इस तरह आग की एक काफी बड़ी लपट तैयार हो गई।

इसके बाद वह अपने साथियों से बोले, "भाइयो! आज इस बात की परीक्षा ली जायेगी कि हम लोगों में से किस में कितना साहस और कष्ट सहने की शक्ति है।"

फिर उन्होंने अपना बाँया हाथ उस जलती हुई लपट के ऊपर कर दिया। एक-दो, पाँच दस नहीं, पूरे बीस मिनट तक वह उस हाथ को लपट के ऊपर उसी तरह किये रहे। खून और माँस जल कर गिरने लगा। हवा में दुर्गन्ध फैलने लगी। देखने वालों के हृदय काँप उठे। किन्तु वीर भगतसिंह इस तरह मुस्कराते हुए खड़े रहे मानो यह उनका हाथ नहीं कोई लकड़ी का टुकड़ा जल रहा हो।

अन्त में उनके साथियों से न देखा गया। उन्होंने बलपूर्वक उन्हें पकड़ कर वहाँ से हटा दिया और हाथ की मरहम पट्टी की। यह देखकर नकली सदस्यों की जान निकलने लगी। वे डर के मारे घबरा कर वहाँ से खिसक गये।

इन लोगों ने कई बार परचे छपवा कर जनता में बँटवाये। जिनमें अंग्रेजी सरकार के अत्याचारों और काले कारनामों का

खुला वर्णन था। इन परचों को पढ़कर भी जनता के हृदय में अंग्रेजों और उनके शासन के प्रति घृणा उत्पन्न होती जा रही थी।

सन् १९२८ में सरदार भगतसिंह 'शहनशाहे चक' नामक ग्राम में आकर रहने लगे। यहाँ रहकर उनका क्रान्तिकारियों से अटूट सम्बन्ध था। वह उनसे मिलने प्रायः लाहौर तथा अन्य नगरों में जाते रहते थे।

: ११ :

विचार संघर्ष

संध्या का समय था। भगवान भास्कर अस्ताचल की ओर जा रहे थे। क्षितिज में सुनहरी लालिमा छा गई थी। पक्षियों के समूह कलरव करते हुए अपने-अपने नीड़ों को लौट रहे थे। 'शहनशाहे चक' ग्राम के बाहर सरदार भगतसिंह एक खेत की मेंड पर बैठे हुए सोच रहे थे, "बहुत दिनों से बटुकेश्वरदत्त नहीं मिला। चन्द्रशेखर आज़ाद का तो काकोरी केस के बाद से कुछ पता ही नहीं है। पुलिस उसके पीछे पड़ी हुई है। सरकार ने उसे जीवित या मृतक पकड़ने वाले को दस हजार रुपए इनाम देने का वायदा किया है।

क्या पुलिस उसे पकड़ सकेगी? ...नहीं, वह पुलिस के हाथ कभी नहीं आ सकता। सारे देश भर की पुलिस उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकती। वह कहीं भी हो संगठन के कार्य में लगा होगा। दल के लिए भविष्य की नई-नई योजनायें बना रहा होगा।

किन्तु...आजकल तो दल का काम कुछ मन्द पड़ गया है। नवयुवकों में वह उत्साह नहीं रह गया है।...सन् १९२० के बाद सचमुच ही श्री रामप्रसाद बिस्मिल के नेतृत्व मे दल ने फिर से उन्नति की। बड़ा ठोस संगठन हुआ। बड़े-बड़े वीर और उत्साही कार्यकर्ता मिले। जिन्होंने बड़े महान् त्याग और तपस्या के साथ,

देश के हित में अपना जीवन अर्पण कर दिया।

सचमुच ही काकोरी केस के बाद दल को बहुत बड़ा धक्का लगा है। इसमें दल के चुनीदा-चुनीदा लोग गिरफ्तार हो गये थे। क्या रामप्रसाद बिस्मिल सरीखे वीर नेता फिर कभी मिल सकेंगे? ...क्या इन शहीदों का बलिदान व्यर्थ जायेगा।

नहीं...शहीदों का बलिदान कभी व्यर्थ नहीं जाता। शहीद के रक्त की एक-एक बूंद क्रान्ति की चिनगारी बन जाती है। भले ही बलिवेदी की रक्तपिपासा, दो-चार, दस-बीस शहीदों के रक्त से तृप्त न हो। वह चाहे तो और शहीदों का रक्तपान कर ले। किन्तु एक दिन वह आयेगा, जब मातृभूमि के कोने-कोने से क्रान्ति की चिनगारियाँ उठेंगी। नवयुवक इन्हीं शहीदों के बलिदानों से प्रेरणा लेकर जननी जन्मभूमि की बेड़ियों के तोड़कर फेंक देंगे।

देश में वीरों की कमी नहीं है! केवल उनकी सुप्त भावनाओं को जागृत करके अच्छे संगठनकर्ताओं की आवश्यकता है। फिर अनेकों—खुदीराम बोस, चापेक ब्रदर्स, गोपीनाथ साहा और रामप्रसाद बिस्मिल उत्पन्न हो जायेंगे।

मेरी 'नौजवान भारत सभा' क्या है? यह भी तो क्रान्तिकारी दल का ही एक अंग है। इसका अलग से नाम तो केवल सरकार को भुलावा देकर सुभीते से संगठन करने के लिये है। अबकी बार क्रान्तिकारी दल का कार्य आरम्भ होते ही, मैं इसी 'नौजवान भारत सभा' के द्वारा पंजाब से सैंकड़ों उत्साही क्रान्तिकारी वीर दल को भेंट कर दूंगा।

किसी तरह एक बार मैं, बटुकेश्वरदत्त, चन्द्रशेखर आज़ाद और अन्य सभी साथी, एक स्थान पर इकट्ठे हो सकें तो भविष्य का कार्यक्रम निर्धारित किया जाये।

मैं जानता हूँ, चन्द्रशेखर आज़ाद चुप रहने वाला व्यक्ति नहीं है। वह किसी दिन क्रान्तिकारियों के इतिहास में ऐसा उदय होगा कि सरकार उसके नाम से थर्रा उठेगी। उत्तर प्रदेश की पुलिस तो अब भी उसके नाम से भयभीत होती है। उस दिन मेरे एक साथी

ने बतलाया था कि एक दिन चन्द्रशेखर आज़ाद लखनऊ से कानपुर आ रहे थे। पुलिस को पता लग गया। उसने कानपुर स्टेशन का घेरा डाल दिया। पूरे स्टेशन पर पुलिस ही पुलिस छाई हुई थी। ट्रेन कानपुर के स्टेशन पर पहुँची, आज़ाद निर्भयतापूर्वक उतर कर, स्टेशन से बाहर जाने वाले फाटक पर पहुँचे। वहाँ एक पुलिस इन्सपेक्टर खड़ा था, वह दो कदम आगे बढ़ा और आज़ाद के सामने आना ही चाहता था कि उसी समय आज़ाद का हाथ अपनी पिस्तौल पर गया। यह देखते ही पुलिस इन्सपेक्टर का रोम-रोम काँप उठा। उसे अपनी मौत दिखाई पड़ने लगी। वह एकदम पीछे हटकर एक ओर को चला गया। आज़ाद मुस्कराते हुए, शेर की भाँति सिर ऊँचा किये, आगे को बढ़ गए। किसी भी पुलिस वाले का साहस उनके आस-पास भी जाने का नहीं हुआ।

एक और मुसलमान पुलिस अफसर तसद्दुम हुसैन ने कई बार आज़ाद का पीछा किया। एक दिन आज़ाद ने उसे देख लिया और जैसे ही उन्होंने अपनी पिस्तौल पर हाथ रखा वैसे ही वह पुलिस अफसर प्राणों के भय से उनके चरणों में गिर पड़ा और क्षमा माँगने लगा। आज़ाद ने मुस्करा कर कहा, "मियाँ जी ! नौकरी करनी है तो करो। लेकिन देश-भक्तों और देश के साथ गद्दारी मत करो। नहीं तुम्हारी दाढ़ी का एक-एक बाल नोच लिया जायेगा।"

मियाँ जी गिड़गिड़ाकर, "हाँ, हाँ" करते, जान बचाकर वहाँ से भागे।

सचमुच ही आज़ाद का निशाना अचूक है। उसकी पिस्तौल से निकली हुई गोली कभी खाली नहीं जाती। सुनते हैं एक बार आज़ाद और कुछ क्रान्तिकारी लोग कहीं जा रहे थे। उनमें से किसी एक ने कहा, आज तो आज़ाद भइया की निशानेबाजी देखी जाए।" आज़ाद ने कुछ देर इधर-उधर देखा और बोले, "देखो ! सामने लगभग २० गज की दूरी पर वह पेड़ है। उस पर एक नन्हा-सा पत्ता लटक रहा है, मैं उसी पत्ते पर निशाना लगाता हूँ।"

बन्दूक से गोली छूटी। सबने कहा, "निशाना नहीं लगा।" दो, तीन, चार, आज़ाद ने लगातार पाँच गोलियाँ चलाईं किन्तु पत्ता हिला तक नहीं। और सब तो चुप रहे किन्तु आज़ाद को बड़ा आश्चर्य हुआ, "न जाने आज क्या बात है, मेरा निशाना तो कभी खाली नहीं जाता ?"

सबने पास जाकर उस पत्ते को देखा, उनके आश्चर्य की सीमा न थी। पत्ता छलनी हो गया था। बन्दूक की पाँचों गोलियों ने उसको पार किया था।

संगठनकर्ता के रूप में भी आज़ाद बहुत चतुर है। उसने अनेकों साहसी कार्यकर्ता दल को लाकर दिए थे। उसी के प्रयास से बन्दूक और पिस्तौल बनाने वाले मिस्त्री तक मिल गए थे। निस्संदेह ! दल का नेता होने योग्य केवल एक वही व्यक्ति है।

...पर वह है कहाँ ? कुछ दिन हुए सुना था, वह झाँसी के पास किसी गाँव में है। बटुकेश्वर दत्त को वहाँ भेजा गया किन्तु इससे पहले ही वह वहाँ से चला गया था। अब मालूम हुआ, वह बम्बई में है। उस नगर का कोना-कोना छान मारा, कहीं भी पता नहीं लगा।

जब तक आज़ाद नहीं आ जाता तब तक संगठन का कार्य उतनी सफलता से नहीं हो सकता जैसा कि होना चाहिए। क्योंकि पंजाब का कार्यक्षेत्र तो मेरे हाथ में है ही। बंगाल को बटुकेश्वर दत्त सम्हाल लेगा किन्तु यू० पी० में तो आज़ाद ही बहुत प्रसिद्ध है। उसे वहाँ का बच्चा-बच्चा जान गया है।

कुछ भी हो, अब व्यर्थ समय नष्ट नहीं करना है। जैसे भी हो वैसे आज़ाद को खोजकर दल का कार्य फिर नये सिरे से आरम्भ कर देना चाहिए। पहले बटुकेश्वर दत्त से मिलूं। शायद उसने आज़ाद का कुछ पता निकाल लिया हो।

अबकी बार हमारे दल के कार्यों से अंग्रेजी सरकार की चूलें हिल जाएँगी। उसे मालूम हो जाएगा, भारत अब गुलाम नहीं रह सकता।

रात के ग्यारह बज चुके थे। इसी उधेड़ बुन में उन्हें समय का ध्यान नहीं रहा। चारों ओर रात का सन्नाटा छाया हुआ था। कहीं-कहीं गीदड़ों के रोने की आवाजें सुनाई दे जाती थीं। वह उठकर ग्राम की ओर चल दिए।

: १२ :

चन्द्रशेखर आज़ाद

बम्बई नगर के बन्दरगाह में एक हृष्ट-पुष्ट कुली काम करता था। वह दिन-भर कठिन परिश्रम करके जहाजों पर माल लादता, शाम को सिनेमा देखता और रात को मालगोदाम के बाहर पड़ कर सो जाता था। लगभग डेढ़ वर्ष से उसका यही नित्य का कार्य-क्रम था। वह अन्य लोगों से कोई विशेष सम्पर्क नहीं रखता था। उसे तो केवल अपने काम से ही काम था। फिर न जाने उसके चेहरे और आँखों में कैसी प्रतिभा थी। केवल उसके साथी कुली ही नहीं, वहाँ काम करने वाले अन्य कर्मचारी भी उसका आदर करते थे। उन्हें क्या पता था, वह कोई साधारण कुली नहीं, देश का सपूत क्रान्तिकारियों का नेता चन्द्रशेखर आज़ाद था।

काकोरी केस के बाद अपने अन्य साथियों के गिरफ्तार हो ज़ाने पर, आज़ाद की बहुत इच्छा थी कि जैसे भी हो वैसे प्रमुख-प्रमुख लोगों को जेल से बाहर निकाल लिया जाए। किन्तु राम-प्रसाद बिस्मिल के बाद जो व्यक्ति दल का नेता चुना गया था, वह इतना काहिल और निकम्मा निकला कि आज का काम कल पर और कल का काम परसों पर टालता रहा। न तो उसने स्वयं कुछ किया और न दूसरों को कुछ करने दिया।

इधर पुलिस आज़ाद के पीछे बुरी तरह पड़ी हुई थी। इन सब बातों से आज़ाद के मन को बहुत बुरा लगा। वह सब छोड़-छाड़कर झाँसी के पास बुन्देलखण्ड के जंगलों में चले गए।

दिन भर निशानेबाजी का अभ्यास करते और जो कुछ खाने को मिलता उससे अपना पेट भर लेते थे।

पास ही के, एक गाँव के जमींदार इनकी सच्चरित्रता और इनके चेहरे पर ब्रह्मचर्य का तेज देखकर मुग्ध हो गए। वह इन्हें अपने घर लिवा ले गए और हर प्रकार के सम्मान से इन्हें रखा। वह इन पर इतना अधिक विश्वास करते थे कि उनकी बन्दूकें व पिस्तौल आदि सभी हथियार इनके पास ही रहते थे।

अब आज़ाद को कारतूसों की तो कोई कमी थी नहीं। वह दिन भर शिकार खेलकर अपना मनोरंजन किया करते थे। बहुधा जमींदार साहब भी इनके साथ शिकार खेलने आ जाते थे। यहीं आज़ाद ने मोटर चलाना भी सीखा। इन्होंने अपने कई साथी भी यहीं बुला लिए थे।

किसी तरह पुलिस को संदेह हो गया कि आज़ाद इस गाँव में हैं। एक दो बार पुलिस के आदमियों को गाँव के आस-पास घूमते देखकर आज़ाद भी सारी स्थिति समझ गए। एक रात को चुप-चाप ही उठकर वहाँ से बम्बई की ओर चल दिए।

यहाँ कुलीगिरी करते हुए पूरा डेढ़ वर्ष बीत चुका था। उधर उत्तर प्रदेश में क्रान्तिकारियों पर चलने वाला मुकद्दमा समाप्त हुआ और रामप्रसाद बिस्मिल, अशफाक उल्ला खाँ व अन्य उनके साथियों को फाँसी पर लटका दिया गया।

जैसे ही आज़ाद ने इन लोगों को फाँसी दिए जाने का समाचार सुना, उनका हृदय एकदम बैठ गया। क्रान्तिकारियों में अग्रणी वीर विनायक दामोदर सावरकर जी ने इन्हें बहुत ढाढस दिलाया।

एक दिन आज़ाद समुद्र के किनारे बैठे-बैठे कुछ सोच रहे थे। तभी एक बहुत बड़ी लहर आई और चली गई। इनके विचारों ने पलटा खाया और सोचने लगे, "सागर कितना विशाल और शान्त है। किन्तु सूर्य की भीषण गर्मी से जब इसका कलेजा जल उठता है तो इसमें भी बड़ी-बड़ी लहरें और तूफान आते हैं। उस

समय कोई भी इसकी चपेट में आ जाए यह किसी की चिन्ता नहीं करता।

"हम भारतवासी भी अंग्रेजों के अत्याचारों से बुरी तरह झुलस चुके हैं। अब अधिक सहन करना हमारी सीमा के बाहर है। अभी हम चापेकर बन्धुओं तथा गोपीनाथ साहा की मृत्यु को भुला भी न पाये थे कि काकोरी के शहीदों का बलिदान हमारे रोम-रोम को जला रहा है, हमें इन वीरों के खून का बदला अत्याचारियों से लेना ही होगा।

"किन्तु···किन्तु अब आगे क्या होगा ? क्या रामप्रसाद बिस्मिल सरीखे वीर फिर मिल सकेंगे ? दल का संगठन छिन्न-भिन्न हो चुका है। सरकार के अत्याचारों का आतंक जनता के हृदय पर बुरी तरह छा गया है। लोग क्रान्ति करना तो दूर रहा, क्रान्तिकारियों का नाम लेने में डरने लगे हैं।"

कुछ देर तक वह कुछ भी न सोच सकने की अवस्था में रहे। तभी उनकी अन्तर आत्मा ने पुकारा, "अरे चन्द्रशेखर ! इससे क्या होता है ? क्या तू इतने से ही घबरा गया। गुलामी की बेड़ियों को तोड़ना आसान काम नहीं है। बलिवेदी की रक्तपिपासा को शांत करने के लिए न जाने कितने बलिदानों की आवश्यकता पड़ती है ?···रामप्रसाद बिस्मिल नहीं रहे तो क्या देश-सेवा का काम ही रुक जाएगा ? अभी तो देश में न जाने कितने बिस्मिल पैदा होकर अपने प्राणों की आहुति चढ़ाएँगे ?···तू तनिक अपने आपको पहिचान, तू क्या रामप्रसाद बिस्मिल से कम है ?···आज तेरे शहीद साथियों की आत्माएँ बड़ी आशाओं के साथ तेरा मुख निहार रही हैं। उन्हें पूर्ण विश्वास है, जो काम वे न कर सके, उसे तू कर दिखाएगा। यह समय निराशा का नहीं, धैर्य रखकर कर्त्तव्य पूरा करने का है।

तभी आज़ाद के हृदय में निराशा रूपी अंधकार नष्ट होकर, नये साहस और नई आशा का प्रकाश चमक उठा। उन्हें ध्यान आया, अभी तो सरदार भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त जैसे वीर

साथी मौजूद हैं । वे बड़ी उत्सुकता से तेरी राह तक रहे होंगे। एक बार फिर सगठन कर डालो । भारत भूमि वीरों की जननी है । यहाँ वीरों की कमी नहीं है । केवल उन्हें मार्ग दिखाने की आवश्यकता है।

देश के ऊपर बलिदान होने वाले शहीदों का रक्त अब रंग लाने वाला है। वह दिन दूर वहीं जब मातृभूमि के कण-कण में क्रान्ति की लहर उठकर अत्याचारियों का नाश कर देगी।

मैने इतना समय व्यर्थ ही नष्ट किया । अब तक तो न जाने कितने बड़े-बड़े काम हो जाते ? खैर, अब देखना है, अत्याचारियों का अत्याचार कितने दिनों टिकता है ?"

इसी प्रकार सोचते-सोचते, फिर से 'उत्तर प्रदेश में लौट जाने का दृढ़ संकल्प करके, वह उठकर चल दिए ।

: १३ :

नई संस्था

सरदार भगतसिंह वहुत तीव्र बुद्धि के व्यक्ति थे । उनका अध्ययन वहुत गहन था। इतिहास और राजनीति में उन्हें विशेष रुचि थी। मार्क्सवाद का उन पर बहुत प्रभाव था। उनके परिवार में भारतीय जनता को केवल राजनैतिक स्वतन्त्रता से ही कोई विशेष लाभ होने की आशा न थी बल्कि गरीब जनता का आर्थिक स्तर भी ऊँचा उठाना अति आवश्यक था । इसीलिए अपने राजनैतिक जीवन के प्रारम्भिक दिनों में उन्हें सरकार के विरुद्ध शस्त्र प्रयोग करने में कोई विशेष रुचि नहीं थी । उनका ध्यान तो अधिकतर गरीवों की सेवा में लगा रहता था । इसीलिए १९२४ की बाढ़ में उन्होंने बटुकेश्वर दत्त को अपने साथ लेकर बाढ़ पीड़ितों की तन मन धन से सेवा की ।

किन्तु काकोरी केस में रामप्रसाद बिस्मिल, अशफाकउल्ला

खाँ और अन्य दो साथियों के फाँसी पर लटकाये जाने के बाद उनके विचारों में विशेष परिवर्तन हो गया। उन्होंने सोचा, जैसे भी हो वैसे देश से उन विदेशियों को पहले निकाल देना चाहिए। इसके लिए एक शक्तिशाली संगठन की आवश्यकता है। निदान वह चन्द्रशेखर और बटुकेश्वर दत्त जैसे मँजे हुए साथियों की खोज में उत्तर प्रदेश में आ गये। और कानपुर, बनारस, आगरा आदि नगरों में ढूँढ़ते हुए झाँसी पहुँचे। उधर चन्द्रशेखर आज़ाद और बटुकेश्वर दत्त भी वहीं आ गये। झाँसी के एक बड़े मकान में सब लोगों ने मिल कर तय किया कि भारत के समस्त क्रांतिकारियों की एक सभा दिल्ली में बुलाई जाए।

सितम्बर सन् १९२८ का महीना था। दिल्ली के पुराने ऐतिहासिक किले में, भारत के कोने-कोने से क्रांतिकारी लोग इकट्ठे हुए थे। सबसे पहले सरदार भगतसिंह ने एक प्रभावशाली भाषण करते हुए कहा—

"प्यारे भाइयो!

जब तक किसी देश की जनता स्वयं अपनी माँगों के लिए लड़ने को तैयार नहीं हो जाती तब तक किसी ठोस लाभ की आशा ही नहीं की जा सकती। हमारे देश में कांग्रेस, जमींदारों, पूंजीपतियों तथा अमीर वकीलों की ही संस्था है। इसीलिए उससे यह आशा करना कि वह आम जनता को आर्थिक कठिनाइयों से छुटकारा दिला सकेगी, केवल एक झूठी आशा है। इसमें कोई संदेह नहीं, महात्मा गांधी एक उदार हृदय और परोपकारी पुरुष हैं, परन्तु केवल परोपकार से ही जनता का कोई हित नहीं हो सकता। इस समय तो देश को ऐसे नौजवानों की आवश्यकता है, जो जन-जन में क्रान्ति तथा नव जीवन की आग फूंक दें। निःस्वार्थ भाव से काम करने वाले उत्साही, त्यागी और वीर व्यक्तियों का संगठन ही इस आवश्यक सामाजिक क्रान्ति का संचालन कर सकता है।

किन्तु याद रखो, जब तक नवजवान देशभक्त अपने प्राणों

की आहुति देने को तत्पर नहीं होंगे तब तक जनता अपनी जड़ता को दूर करके देश-सेवा के लिए आगे नहीं बढ़ सकती। इसके लिए भारत के नौनिहालों को फांसी के तख्ते पर खड़े होकर नवजवानों को देश-सेवा के लिए ललकारना होगा। तभी जन-जन में जागृति उत्पन्न होगी। शहीदों के रक्त की एक-एक बूंद से क्रान्ति की लहर लहरा उठेगी।

दरिद्रता की संसार-व्यापी समस्या पर विचार करके हम इस नतीजे पर पहुँचे कि भारत की पूर्ण स्वाधीनता के लिए हमें केवल राजनैतिक ही नहीं आर्थिक स्वाधीनता की भी अत्यन्त आवश्यकता है। इसके लिए पूंजीपतियों की संस्था नहीं गरीब मजदूरों और किसानों के हित में कार्य करने वालों की संस्था चाहिए।

हमारे इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए रूस का जीता जागता उदाहरण हमारे सामने है। इस समय परिस्थिति को देखते हुए केवल साम्यवाद के द्वारा ही हम प्रगति की ओर बढ़ सकते हैं।"

अंत में सरदार भगतसिंह की जोरदार दलीलों से बाध्य होकर सभा ने साम्यवादी सिद्धान्तों के अनुसार अपनी कार्य प्रणाली तैयार की। इसके बाद से पुलिस अफसरों और मुखबिरों की हत्या करने का महत्त्व बहुत कम हो गया। अब जनता में जागृति फैलाने वाले कार्यों की ओर ध्यान दिया जाना ही क्रान्तिकारी दल का उद्देश्य बन गया।

अब संस्था को दो भागों में बाँट देने का निश्चय किया गया। एक दल में वास्तविक कार्य करने वाले लोग रहे। दूसरे में वे लोग जो कार्य क्षेत्र में आने में तो असमर्थ हैं किन्तु संस्था और उसके कार्यों के प्रति सच्ची सहानुभूति रखते हैं।

पहले दल का कार्य अस्त्र-शस्त्र एकत्रित करना, आतंकवादी कार्यों को कार्य-रूप में परिणित करना और दल के सभी कार्यों का सार्वजनिक कार्यों के रूप में उन्नति करना होगा।

दूसरा दल जनता से चन्दा इकट्ठा करेगा। पहले दल वालों के रहने का प्रबन्ध और प्रचार करेगा।

इसके बाद भगतसिंह जी ने प्रस्ताव रखा कि दल का नाम 'हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन' से बदल कर 'हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन आर्मी' रखा जाये।

इस पर काफी गरमा-गरम बहस हुई। कुछ लोगों का कहना था—यह नाम रामप्रसाद बिस्मिल, चौ० शचीन्द्रनाथ सान्याल और योगेश चटर्जी जैसे विश्वविख्यात शहीदों का रखा हुआ है। यह नाम प्रसिद्धि भी बहुत प्राप्त कर चुका है, इसलिए इसे किसी भी तरह बदलना उचित नहीं है। किन्तु अन्त में भगतसिंह जी का प्रस्ताव स्वीकृत करके संस्था का नाम बदल ही दिया गया।

एक केन्द्रीय समिति का निर्माण किया गया। सरदार भगतसिंह और विजय कुमार प्रमुख कार्यकर्त्ता तथा राजपूताने के कुन्दनलाल प्रधान चुने गये। सेना के अध्यक्ष चन्द्रशेखर आज़ाद बने। इसमें कोई संदेह नहीं; सरदार भगतसिंह कार्यकर्त्ता दल के कुशल नेता के रूप में और प्रचार कार्य करने में बड़े दक्ष थे।

अन्त में यह भी निश्चय किया गया कि 'हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन आर्मी' के सदस्य घरबार से सम्बन्ध त्यागकर दल के कार्यों में सारी शक्ति लगा दें। इसके अतिरिक्त सभी सदस्यों को सभी धार्मिक साम्प्रदायिकता का भी बहिष्कार करना अनिवार्य था। इसलिए सरदार भगतसिंह ने अपने केशों को कटवा कर दाढ़ी मुड़वा दी।

कुछ दिनों बाद संस्था का प्रधान कार्यालय झाँसी से हटा कर आगरा लाया गया। दो बड़े-बड़े मकान किराये पर लिये गये। अनेकों नवयुवक अपने-अपने घरबार छोड़ कर यहाँ रहने लगे। इन लोगों के इन दिनों के जीवन की कहानी सचमुच ही एक बड़े साहस, त्याग और तपस्या की कहानी है। इन दिनों संस्था के पास धन की बहुत कमी थी। कभी-कभी तो कई-कई दिन और रात बिना कुछ खाये पिये केवल एक-एक चाय की प्याली में ही बिता देने पड़ते थे। कड़ाके की सर्दियों में भी बिस्तरे न थे। ओढ़ने के लिए भी केवल दो चार कम्बल थे। आठ-आठ, दस-दस आदमी इन

दो-चार कम्बलों में ही भयानक सर्दी की रातें बिता दिया करते थे।

सरदार भगतसिंह का जीवन विलासितापूर्ण वातावरण में व्यतीत हुआ था। वह इस तरह के कष्ट उठाने के आदी न थे। किंतु साथियों को कष्ट में छोड़कर जाना उन्हें कतई पसन्द न था। वह भी इन लोगों के साथ उसी तरह हँसी-खुशी जीवन के दिन काट रहे थे। उनके अध्ययन का उत्साह नित्यप्रति बढ़ता ही जा रहा था। साम्यवाद के तो मानो वह प्रकांड पंडित थे। उनकी उक्तियाँ बड़ी गम्भीर और हृदयग्राही होती थीं।

: १४ :

साइमन कमीशन

प्रथम महायुद्ध में जर्मनी के विरुद्ध भारतवासियों ने अंग्रेजों की भरपूर सहायता की थी। स्वयं महात्मा गांधी सरीखे राष्ट्रीय नेताओं ने हजारों-लाखों रंगरूट अंग्रेजी सेना में भरती कराये थे। अंग्रेजी सरकार ने भी भारतीयों से बड़े-बड़े वायदे किये थे। युद्ध में अंग्रेजों की विजय हुई। हमारे नेताओं और देश को बड़ी-बड़ी आशाएँ बँधीं।

अन्त में बहुत कुछ संघर्ष के बाद, रोते भारत की माँगों की जाँच करने के लिए, मिस्टर साइमन की अध्यक्षता में इंगलेंड से एक कमीशन चला। इस कमीशन में कुल सात सदस्य थे। पहले यह निश्चय किया गया था कि कमीशन के आधे सदस्य भारतीय होंगे किन्तु समय आने पर अंग्रेज अपने वायदे से फिर गये। कमीशन में एक भी भारतीय सदस्य न लिया गया। इससे भारतीयों की आशा टूट गई। सारे देश में क्रोध की एक लहर सी उमड़ पड़ी। सभी नेताओं और देशवासियों ने इस कमीशन का विरोध किया।

यह कमीशन भारत के भिन्न-भिन्न नगरों में होता हुआ ३०

अक्तूबर, १६२८ को लाहौर पहुँच रहा था। ब्रिटिश नौकरशाही की ओर से इसके स्वागत की बड़ी-बड़ी तैयारियाँ की गई थीं। दूसरी ओर नगर के लाखों नर-नारी अपने-अपने हाथों में काली झंडियाँ लिए हुए पंजाब केसरी लाला लाजपतराय के पीछे-पीछे 'साइमन कमीशन लौट जाओ' के नारों से आकाश को गुंजाते हुए स्टेशन की ओर बढ़ जा रहे थे।

पुलिस ने उत्साह में भरे हुए विशाल जनसमूह को आगे बढ़ने से रोक दिया और लोगों को तितर-बितर होने की आज्ञा दी। किन्तु सभी अपने-अपने स्थान पर डटे रहे, कोई टस-से-मस न हुआ। यह देखकर पुलिस अधिकारियों के क्रोध की सीमा न रही। नौकरशाही के उन दूतों ने निहत्थे नर-नारियों पर लाठियाँ बरसाना आरम्भ कर दिया। अनेकों व्यक्तियों के सिर फूट गए, बहुत से बेहोश होकर गिर पड़े फिर भी जलूस पीछे न लौटा। इसी समय एक पुलिस अफसर ने क्रोध में भर कर देश के हृदय सम्राट पंजाब केसरी लाला लाजपतराय के सिर में बड़े जोर से लाठी मारी। उनके सिर में चक्कर आ गया, आँखों के आगे अँधेरा छा गया। वह किसी तरह गिरते-गिरते बचे।

इस जलूस में सरदार भगतसिंह भी थे। पंजाब केसरी के सिर पर लाठी उनकी आँखों के सामने ही पड़ी थी। इस दृश्य से क्रोध के मारे उनकी भौंहें तन गईं, सारा शरीर काँप गया! किन्तु उचित अवसर न देखकर उन्होंने किसी प्रकार अपने आपको काबू में रखा और घायलों की सेवा-सुश्रूषा में लग गये।

१७ नवम्बर को सवेरे से ही हजारों नर-नारियों की भीड़ अस्पताल के आस-पास जमा थी। सभी अपने प्रिय नेता पंजाब केसरी की दशा के बारे में सही-सही बात जानने को उत्सुक थे। जनता को सूचना मिली थी कि पिछली रात से उनकी तबीयत गिर गई है। दोपहर होते-होते पंजाब केसरी लाला लाजपतराय इस असार संसार से कूच कर गए। सारे देशवासियों ने बड़े दुःख के साथ इस दुखद समाचार को सुना और देश के कोने-कोने में

शोक की एक लहर दौड़ गई। क्रूर नौकरशाही के अत्याचारों की चक्की में देश का सच्चा सपूत पिस गया था।

देश का नौजवान खून अपने प्रिय नेता की मृत्यु पर भड़क उठा। उन्होंने लाहौर के सीनियर पुलिस सुपरिंटेंडेंट मिस्टर स्काट और उनके सहायक पुलिस सुपरिंटेंडेंट मिस्टर सांडर्स को लालाजी की मृत्यु का जिम्मेदार ठहराया।

'हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन आर्मी' के प्रमुख कार्यकर्त्ताओं की सभा बुलाई गई। विचार विनिमय के बाद यह तय किया गया, "पंजाब केसरी की मृत्यु का बदला लेकर ब्रिटिश नौकरशाही को यह बतला देना आवश्यक है कि भारतवासी अत्याचारियों से उनके अत्याचार का बदला लेना भी जानते हैं।"

इसके बाद यह कार्य दल के तीन प्रमुख कार्यकर्त्ताओं ने अपने हाथ में ले लिया।

: १५ :

बदला

पंजाब केसरी की मृत्यु के ठीक एक महीने बाद १७ दिसम्बर को सन्ध्या के समय सहायक पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट मिस्टर सान्डर्स ने अपनी मोटर साइकिल बाहर निकलवाई और उस पर चढ़ कर पुलिस आफिस से घर को जाने ही वाले थे कि यकायक धांय, धांय, धांय तीन गोलियाँ चलीं और मिस्टर सान्डर्स वहीं ढेर हो गये।

गोलियों की आवाज सुनकर एक दूसरे पुलिस अफसर मिस्टर फर्न दफ्तर से बाहर आये। दो गोलियाँ सनसनाती हुई उनके सिर पर से निकल गयीं। वह अपनी जान बचाने के लिए वापस लौट गये। पुलिस कान्स्टेबिल चाननसिंह ने आक्रमणकारियों का पीछा किया। उन्होंने चाननसिंह से लौट जाने के लिये बार-बार कहा।

किन्तु वह न माना। अन्त में एक गोली मार कर उसका भी काम तमाम किया और चलते बने।

ये आक्रमणकारी सरदार भगतसिंह व श्री शिवराम राजगुरु थे। पंडित चन्द्रशेखर आजाद पर इन दोनों की रक्षा का भार था।

इस हत्या का सारा षड्यन्त्र बड़ी चतुराई से रचा गया था। पहले इन तीनों का विचार था कि अपने प्राणों का मोह छोड़कर, श्री यतीन्द्रनाथ मुखर्जी व उनके साथियों की तरह पुलिस से खुल कर मोर्चा लिया जाए। फिर उन्हीं की तरह लड़ते-लड़ते वीर गति प्राप्त की जाए। क्योंकि इन लोगों की धारणा थी, इस तरह प्राणों की आहुति देने से देश के नवयुवकों का ध्यान क्रान्तिकारी दल की ओर आकृष्ट होगा, उनमें जागृति उत्पन्न होगी। इससे देश में एक ठोस क्रान्ति का तूफान आएगा जो ब्रिटिश साम्राज्य का तख्ता उलट देगा।

किन्तु उनकी यह योजना विफल हो गई। क्योंकि एक तो ये लोग मिस्टर स्काट के बदले मिस्टर सान्डर्स की हत्या कर बैठे। दूसरे पुलिस वालों में उस समय इनका पीछा करने वाला कोई नहीं था। केवल चाननसिंह ही दौड़ा, सो ठण्डा कर दिया गया।

इसके बाद ये तीनों डी० ए० वी० कालिज के छात्रावास में चले गये। वहाँ उन्होंने काफी देर तक पुलिस की प्रतीक्षा की, किन्तु पुलिस न आई। अन्त में वे दो साइकिल पर सवार होकर अपने निवास-स्थान को चले गये।

इन तीनों के वहाँ से चले जाने के बाद पुलिस अपने दल बल के साथ वहाँ पहुँच गई। उसने चारों ओर से डी०ए० वी० कालिज का बोर्डिंग हाउस घेर लिया। आने-जाने के सभी रास्ते रोक दिये गये और कोने-कोने की तलासी ली गई। केवल इतना ही नहीं, लाहौर से बाहर जाने वाली सभी सड़कों पर पुलिस का कड़ा पहरा बिठा दिया गया। रेलवे स्टेशनों पर खुफिया पुलिस की कड़ी निगरानी रहने लगी। लाहौर से बाहर जाने वाले सभी युवकों पर कड़ी नजर रखी जाती थी। सारे नगर में जगह-जगह

पुलिस ने छापे भी मारे किन्तु पुलिस के सारे प्रयत्न विफल रहे और ये लोग उनके हाथ न आ सके।

लाहौर स्टेशन पर जगह-जगह पुलिस लगी हुई थी। किसी भी व्यक्ति का उनकी दृष्टि से बच निकलना असम्भव था। नगर से आने वाले टाँगे, टैक्सी, कार आदि हर सवारी का बड़ी साव-धानी से निरीक्षण किया जा रहा था। उसी समय एक नई कार वहाँ आकर रुकी। एक साहब अंग्रेजी वेष-भूषा से सुसज्जित उसमें से बाहर निकले। साथ में उनकी मेम साहब भी थीं। वह आधु-निकता का पूर्ण स्वरूप धारण किये हुए थीं। दोनों स्टेशन के भीतर की ओर चल दिये। उनके पीछे-पीछे अर्दली चल रहा था। पुलिस इन्सपेक्टर ने अटेन्शन होकर साहब को सलाम किया और पीछे हट गया।

साहब और मेम अमृतसर जाने वाली गाड़ी के फर्स्ट क्लास में जा बैठे। अर्दली भी, उनके लिये फर्स्ट क्लास के दो टिकट और अपने लिये सैकेन्ड क्लास का टिकट लेकर, गाड़ी में जा बैठा। गाड़ी चल दी। पुलिस को तनिक भी सन्देह नहीं हुआ कि जिन की खोज में वह इतनी परेशान थी, वही लोग उनकी आँखों में धूल-झोंककर सुरक्षित चले जा रहे थे।

साहब के रूप में भगतसिंह थे, अर्दली राजगुरु बने हुए थे। मेम का अभिनय करने वाले स्वयं पंडित चन्द्रशेखर आज़ाद थे। उनका मेकअप इतनी चतुराई से किया गया था कि देखने वालों की निगाहें उस स्वस्थ युवती के सौन्दर्य और सजधज में ही अटकी रह जाती थीं।

पंजाब मेल अपनी पूरी रफ्तार से अमृतसर की ओर चली जा रही थी। इस नाटक के तीनों अभिनेता मन-ही-मन अपनी सफ-लता पर बहुत प्रसन्न हो रहे थे। सरदार भगतसिंह और राजगुरु युवती भेष में पंडित जी को देखकर अपनी हँसी बड़ी कठिनता से रोक पा रहे थे। अमृतसर पहुँचने से पहले ही किसी स्टेशन पर उतर कर वे तीनों चल दिये।

: १६ :

हत्या के बाद

यद्यपि पुलिस को अभी तक कोई पक्का सबूत नहीं मिला था। फिर भी उसका विश्वास था कि सान्डर्स-हत्याकाण्ड में सरदार भगतसिंह अवश्य सम्मिलित थे। इसीलिये उनको गिरफ्तार करने का पूरा-पूरा प्रयत्न किया जाने लगा। जगह-जगह पुलिस अफसर नियुक्त किये गए। खुफिया विभाग के लोगों का एक जाल सा बिछा दिया गया था। सरकार की ओर से पुलिस को गुप्त आज्ञा थी कि सरदार भगतसिंह जहाँ भी मिलें, तुरन्त गिरफ्तार कर लिये जायें। इतना सब कुछ होने पर भी भगतसिंह जी अपने कार्य के लिये, जहाँ चाहते वहाँ जाते थे और खूब भ्रमण करते थे।

सान्डर्स हत्याकाण्ड को सफलता से जनता के हृदय में क्रान्तिकारियों के प्रति श्रद्धा और सम्मान बढ़ गया था। देश के नवयुवकों और विद्यार्थियों में बड़ी सनसनी फैल गई थी। सरकार के विरुद्ध उनका उत्साह बहुत बढ़ गया था। इससे दल की आर्थिक दशा बहुत सुधरने लगी। लोग बड़ी खुशी से चन्दा देने लगे।

इन्हीं दिनों कलकत्ता में राष्ट्रीय महासभा का अधिवेशन होने वाला था। 'सिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन आर्मी' ने यह निश्चय किया कि सरदार भगतसिंह और श्री विजयकुमार परिस्थिति का अध्ययन करने वहाँ जायें और बंगाल के क्रान्तिकारियों से सम्बन्ध स्थापित करें। क्योंकि संयुक्त प्रान्त में काकोरी केस के सम्बन्ध में गिरफ्तारियाँ होने तथा बंगाल में क्रिमिनल लॉ अमेन्डमैन्ट एक्ट लागू होने से क्रान्तिकारियों का देशव्यापी सम्बन्ध कई जगह से टूट गया था। देवघर षड्यंत्र केस ने यू० पी० और बंगाल के क्रान्तिकारियों के सम्बन्ध को और भी बुरी तरह छिन्न-भिन्न कर दिया।

बंगाल के क्रान्तिकारियों को सरदार भगतसिंह से मिलकर

बहुत खुशी हुई। उन्होंने उनका हृदय से स्वागत किया। भगत सिंह जी के ऊपर उन लोगों का गहरा प्रभाव पड़ा। जिन्होंने दल के कार्य के लिये सरकार की जेलों में लम्बी-लम्बी सजायें काटी थीं। किन्तु आगे बातचीत करने पर उन्हें पता चला कि 'हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन आर्मी' ने जो मार्ग ग्रहण किया है, उसमें बंगाल के क्रांतिकारियों का विश्वास नहीं है। वे इस बात को तो मानते थे कि देश की स्वतंत्रता के लिए हिंसात्मक क्रांति की आवश्यकता है किन्तु साम्यवादी ढंग पर आतंकवाद उन्हें पसंद नहीं था।

यहाँ आकर सरदार भगतसिंह ने अनुभव किया कि दल के पास बम्बों की बड़ी आवश्यकता है। इसलिए उन्होंने ऐसे आदमी की खोज की जो बम्ब बनाना जानता हो। सौभाग्य से उन्हें ऐसा एक आदमी मिल गया जो इस काम में पूरी तरह दक्ष था। किन्तु जब उससे कहा गया कि वह दल वालों को बम्ब बनाना सिखलाया करे तो उसने मना कर दिया। उसने कहा, "बंगाल के क्रांतिकारी नेताओं ने बम्ब बनाने और उनका प्रयोग करने का विरोध किया है। इसलिए दल का सदस्य होने के नाते मैं ऐसा नहीं कर सकता।"

सरदार भगतसिंह ने उसे समझाया, "ठीक है, बंगाल के क्रांतिकारी नेता ऐसा कहते हैं तो यह बात बंगाल में ही लागू हो सकती है। इस समय यू० पी० और पंजाब की परिस्थिति कुछ दूसरी है, यहाँ बम्ब बनाना बहुत जरूरी है। बंगाल के दल से इस बात का कोई सम्बन्ध नहीं रहेगा।"

किसी तरह वह आदमी राजी हो गया। सबसे पहले आगरा में बम्ब बनाने का कारखाना खोला गया। फिर लाहौर और सहारनपुर में भी इसी तरह के केन्द्र स्थापित किए गए।

इन दिनों तक देश का व्यापारी वर्ग भी क्रांतिकारियों से बहुत सहानुभूति रखने लगा था। इसलिए बम्ब बनाने के लिए रासायनिक द्रव्यों को प्राप्त करने में कोई विशेष कठिनाई नहीं

होती थी। दो महीने तक बराबर बम्ब तैयार किए जाते रहे। फिर इन बम्बों की परोक्षा झाँसी के पास बुन्देलखण्ड के जंगलों में की गई। प्रयोग बहुत ही सफल हुआ। इससे क्रांतिकारियों को बहुत खुशी हुई। उनमें एक नया उत्साह उत्पन्न हो गया।

हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन आर्मी का एक नया बिहारी केन्द्र कलकत्ते में स्थापित किया। इसके अध्यक्ष भी एक बिहारी सज्जन थे। इसी केन्द्र के अन्तर्गत भागे हुए राजनैतिक व्यक्तियों को आश्रय देने के लिए एक आश्रम भी खोला गया।

इसी बीच दल का एक सदस्य बहुत बीमार पड़ गया। उसके चेचक निकल आई थी। सरदार भगतसिंह ने दिन रात एक करके उसकी जी जान से सेवा-सुश्रूषा की और वह शीघ्र ही ठीक हो गया। आगे जाकर इसी कृतघ्न ने गिरफ्तार होने पर इन लोगों के विरुद्ध गवाही दी।

: १७ :

ट्रेड्स डिस्प्यूट बिल

'हिंदुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन आर्मी' की केन्द्रोय समिति ने, पंजाब केसरी लाला लाजपतराय की मृत्यु का बदला लेकर सरदार भगतसिंह और उनके साथियों को पुलिस से लड़ते-लड़ते शहीद होने के लिए भेजा था। समिति की धारणा थी, इस तरह बलिदान होने से देश में क्रान्तिकारियों के प्रति सद्भावना उत्पन्न होकर क्रान्ति को एक लहर जागृत हो उठेगी। किन्तु इन लोगों को उस समय पुलिस से मुठभेड़ करने का अवसर भी प्राप्त नहीं हुआ। फिर भी सान्डर्स की हत्या के बाद से जनता इनका बहुत सम्मान करने लगी थी। यद्यपि यह संस्था अपने उद्देश्यों को पर्चों में छपवा कर समय-समय पर गुप्त रूप में बंटवाती रहती थी। तब भी समिति यह चाहती थी कि कभी ऐसा अवसर आये, जब हम

अपने उद्देश्यों को जनता के सामने खुले रूप में अत्यंत प्रभाव-शाली ढंग से रख सकें। भले ही इस काम के लिए हममें से कुछ लोगों को अपना बलिदान देना पड़ जाये।

उन दिनों बम्बई में 'मजदूर संघ' मिल मालिकों के विरुद्ध घोर आन्दोलन कर रहा था। साम्यवादी कार्यकर्ता मजदूरों का साथ दे रहे थे। सरकार ने साम्यवादियों को पकड़ कर जेल में बन्द कर दिया और उन्हें 'मेरठ कान्सप्रेंसी केस' में फँसाने की नौकरशाही के पिट्ठुओं ने योजना बना ली। इससे उत्तेजना और भी अधिक फैल गई।

सरकार ने इस उत्तेजना को शान्त करने का तो कोई प्रयास नहीं किया। साथ ही मज़दूरों के विरुद्ध 'ट्रेड्स डिस्प्यूट बिल' असेम्बली में पास कराने की योजना बना डाली। इससे मज़दूर वर्ग काँप गया, उसे डर था, बिल पास हो जाने पर मज़दूर आन्दोलन बुरी तरह कुचल दिया जायेगा। इससे मज़दूरों का हित और उनकी माँगें सदैव के लिए खड्डे में पड़ जायेंगी।

क्रान्तिकारी दल को अपनी इच्छा पूरी करने का अवसर मिला। दल के आगरा केन्द्र पर नित्य ही इस विषय में बड़े-बड़े वाद-विवाद होने लगे। सरदार भगतसिंह का मत था—"हमारी पार्टी को इस समय ऐसा काम करना चाहिये जिससे देश भर की जनता को यह विश्वास हो जाए कि हमारी संस्था मज़दूरों व किसानों और उनके आन्दोलनों से पूरी सहानुभूति रखती है।"

निदान दल की एक सभा दिल्ली में बुलाई गई और वहाँ यह तय किया गया कि बटुकेश्वर दत्त एक और आदमी को अपने साथ लेकर असेम्बली पर धावा बोल दें और दोनों ही अपने आपको गिरफ्तार करा दें। इस समय हमारा उद्देश्य किसी की हत्या करने का नहीं है। असेम्बली में बम्बों का प्रयोग करके हमें सरकार को केवल यह बता देना है कि हम 'पब्लिक सेफ्टी बिल' का विरोध करते हैं।

इस तरह गिरफ्तार होने के बाद वे लोग अदालत में अपनी

पार्टी का उद्देश्य बताते हुए एक प्रभावशाली वक्तव्य देंगे। जिससे जनता में पार्टी के प्रति फैला हुआ भ्रम दूर होकर उसे सच्चे रूप में समझ सकें।

वटुकेश्वर दत्त के साथ जाने के लिए भगतसिंह को नहीं चुना गया था। किन्तु उन्हीं के एक मित्र ने उन्हें एक पत्र लिखा था—

प्रिय भगतसिंह,

'हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन आर्मी' के सिद्धान्तों को जनता के सम्मुख रखने के लिए तुमसे अधिक उपयुक्त व्यक्ति कोई दूसरा नहीं हो सकता। इस समय तुम्हारे सामने अपनी पार्टी और देश की सेवा का बड़ा अच्छा सुअवर है। मेरी राय में तुम्हें इस अवसर को हाथ से जाने नहीं देना चाहिए।

मेरे मित्र ! मातृभूमि तुम्हें पुकार रही है। यह समय किसी मोह में फंसने का नहीं है। तुम्हारे पवित्र रक्त का बलिदान देश के नवजवानों के लिए आदर्श बन जायेगा। उनके हृदयों में क्रान्ति की आग फूंक देगा।

परतंत्रता की बेड़ियों नें जकड़ी हुई भारतमाता तुम्हारा मुख निहार रही है। वह तुम्हारे ही प्राणों से बलि वेदी की रक्त-पिपासा शान्त करना चाहती है।"

भगतसिंह तो स्वयं ही इस काम के लिए लालायित हो रहे थे। इस पत्र ने उन्हें और भी उत्साहित कर दिया। उन्होंने केन्द्रीय समिति को इस बात के लिए राजी कर लिया कि बटुकेश्वर दत्त के साथ वह भी असेम्बली में बम फेंकने जायेंगे।

इसके बाद उन्होंने अपने मित्र को पत्र का उत्तर देते हुए लिखा—

प्रिय मित्र !

उचित समय पर तुम्हारी उचित सलाह के लिये मैं बहुत प्रसन्न हुआ। मनुष्य के ऊपर बहुत सेउ त्तरदायित्व होते हैं। उसे माता-पिता और मित्रों, सभी के स्नेह और कोमल भावनाओं का ध्यान रखना पड़ता है। किन्तु क्रान्तिकारियों के जीवन में प्रेम

एक रोड़ामात्र है। क्योंकि कर्त्तव्य और प्रेम दो विरोधी भावनायें हैं। कर्त्तव्य पूरा करने के लिये सभी प्रकार के स्नेह बन्धनों को तोड़ देना पड़ता है।

इसलिये चिन्ता न करो, क्रान्तकारी के मार्ग में इस तरह की कोई बाधा उसे उसके मार्ग से विचलित नहीं कर सकती। उसके जीवन में क्रान्ति, रोम-रोम में क्रान्ति, पग-पग पर क्रान्ति की चिनगारियाँ सुलगती रहती हैं। इन्हीं चिनगारियों को प्रज्वलित करने के लिए वह अपने प्राणों की आहुति दे देने में अपना सौभाग्य ही समझता है।

भगतसिंह के बारे में लोगों का भ्रम था, वह शुष्क और भावनाहीन व्यक्ति है। किन्तु वास्तव में वह बहुत ही हँसमुख और कोमल हृदय थे। दो कर्त्तव्य सामने आ जाने पर अवश्य ही उनके हृदय में स्नेह और कर्त्तव्य का विचित्र द्वन्द्व उपस्थित हो जाता था और वे ऊपर से शुष्क से प्रतीत होने लगते थे। फिर भी वह स्नेह को हृदय से कभी हटने नहीं देते थे और न स्नेह के कारण कर्त्तव्य से विमुख होते थे।

उन्होंने अपने मित्र को जो अन्तिम पत्र लिखा था, उसकी एक-एक पंक्ति स्नेह में डूबी हुई थी। तब भी उन्होंने कर्त्तव्य को ही सर्वोपरि माना था। ऊपर का पत्र तो उनके द्वारा लिखे गये उस पत्र का केवल अंश मात्र था।

: १८ :

असेम्बली में बम

८ अप्रैल, १९२९ का दिन था। दिल्ली की केन्द्रीय असेम्बली हाल में सदस्य लोग अपनी कुर्सियों पर बैठे थे। भारत के तत्कालीन वायसराय लार्ड इरविन भी अपने स्थान पर विराजमान थे। कांग्रेस सदस्य पंडित मोतीलाल नेहरू और महामना

पंडित मदनमोहन मालवीय व असेम्वली अध्यक्ष श्री वी०जे० पटेल के चेहरे कुछ गम्भीर थे। क्योंकि आज 'ट्रेड्स डिस्प्यूट बिल' पास होने के लिए असेम्बली में रखा जाने वाला था और उसके पास हो जाने की भी वहुत कुछ आशा थी। दर्शकों की गैलरियाँ भीड़ से खचा-खच भरी हुई थीं।

जैसे ही एक सदस्य बिल पढ़ने के लिए खड़ा हुआ वैसे ही यकायक एक बड़े जोर का धमाका सुनाई पड़ा। सारा असेम्वली हाल धुएँ से भर गया। कुछ वेंचें चूर-चूर हो गईं। फर्श की सतह में एक बड़ा-सा गड्ढा हो गया। किसी ने दर्शकों की गैलरी से वम्ब फेंक दिया था।

यद्यपि वम्ब से किसी व्यक्ति के कोई चोट नहीं लगी थी तब भी धमाके की आवाज होते ही सारे सदस्य उठकर पास वाले कमरे की ओर इस तरह जान बचा कर भागे मानो मृत्यु उनका पीछा कर रही हो। कुछ ने तो गुप्तखानों में घुसकर ठंडी साँसें लीं। दर्शकों की गैलरियाँ, जहाँ खड़े होने को भी स्थान बाकी न रहा था, दमभर में बिल्कुल खाली हो गईं।

इस कोलाहलपूर्ण वातावरण में भी पंडित मोतीलाल नेहरू, पंडित मदनमोहन मालवीय, सर जेम्स क्रेकर और श्री०वी०जे० पटेल अपने-अपने स्थानों पर आरूढ़ रहे।

कुछ देर बाद जब कोई दूसरा धमाका नहीं हुआ और लोगों को विश्वास हो गया कि कोई दूसरा बम्ब नहीं फटेगा तो सदस्य लोग साहस करके असेम्वली हाल में वापस आए। बाहर सुरक्षा के लिए खड़ी हुई पुलिस के अफसर भी भीतर घुसे। सबने देखा—सेन्ट्रल गेट और महिलाओं की गैलरी के वीच में दो नवयुवक खड़े हुए मुस्करा रहे थे। वे दोनों बम्ब फेंकने वाले सरदार भगतसिंह और श्री बटुकेश्वर दत्त थे।

यद्यपि असेम्बली भवन के बाहर पुलिस का कड़ा पहरा रहता था फिर भी ये दोनों तीन दिन से बराबर वहाँ आ रहे थे। इनके पास एक जेब में भरा हुआ रिवाल्वर और दूसरी में बम्ब तैयार

रहता था। ये केवल उस अवसर की प्रतीक्षा में रहते थे, कब असेम्बली में ट्रेड्स डिस्प्यूट बिल रखा जाए और हम बम्ब फेंकें !

इस भगदड़ में ये लोग चाहते तो बड़ी सरलता से भागकर बच सकते थे। किन्तु ये तो स्वयं गिरफ्तार होकर ब्रिटिश साम्राज्यशाही के अत्याचारों का भंडाफोड़ करने आए थे।

यदि ये चाहते तो इधर-उधर भागते हुए सरकारी अफसरों को भी अपने भरे हुए रिवाल्वरों से ठिकाने लगा सकते थे। किन्तु इन्होंने इस तरह का कोई काम नहीं किया केवल मुस्कराते हुए, पुलिस के पास आने की प्रतीक्षा करते रहे।

बहुत देर बाद जब पुलिस सार्जेण्ट साहस बटोर कर उनके पास आया तो इन दोनों ने अपने-अपने रिवाल्वर निकालकर सामने कुर्सी पर रख दिए और बड़े जोर से गला फाड़कर नारे लगाने लगे—"इंकलाब जिंदाबाद, साम्राज्यवाद का नाश हो।'

ये नारे भारत में पहले ही पहले इन्हीं लोगों ने इसी समय लगाये थे। फिर बाद में तो इन नारों का प्रचार देश के कोने-कोने में खूब हुआ और जनता को उत्साहित करने के लिए नवयुवकों को बड़े प्रिय लगने लगे।

नारे लगाने के बाद उन लोगों ने कुछ पर्चे फेंके, जिन पर 'हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन आर्मी' लिखा हुआ था। इन पर्चों में एक अपील की गई थी जो टाइप की हुई थी। इस अपील के ऊपर लाल रंग का वैसा ही शीर्षक था, जैसा कि उन पर्चों में था जो कि सांडर्स की हत्या के बाद जनता में बाँटे गए थे।

पर्चों में लिखा था—

सांडर्स मारा गया, लालाजी का बदला लिया गया।

बहरे को सुनाने के लिए जोर से कहना पड़ता है। हमारी सरकार भी बहरा है, इसीलिए हमें बम्ब के धमाके के साथ बताना पड़ा है कि हम 'ट्रेड्स डिस्प्यूट बिल' का पूर्ण रूप से विरोध करते हैं।

ब्रिटिश साम्राज्यशाही सरकार को समझ लेना चाहिए कि

अब समय बदल चुका है। फ्रांसीसी क्रांतिकारी वेलियन्त ने क्रांति के बारे में जो कुछ कहा है, उसकी जड़ें भारत में जम चुकी हैं। भारत का क्रांतिकारी दल देश में क्रांति का एक तूफान लाने वाला है जिससे विदेशी सरकार की जड़ें उखड़कर जा पड़ेंगी।

हम असेम्बली के सदस्यों से प्रार्थना करते हैं, वे जनता के प्रतिनिधि हैं इसलिए अब वे अपने निर्वाचकों के पास लौट जाएँ और जनता को भावी क्रांति के लिए तैयार करें।

पर्चे बाँटने के बाद ही दो पुलिस सार्जेण्ट और कुछ कांस्टेबल आगे बढ़े। उन्होंने सरदार भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त को गिरफ्तार कर लिया। इन दोनों ने असेम्बली भवन के बाहर जाने से पहले, फिर "इंकलाब जिन्दाबाद, साम्राज्यवाद का नाश हो" नारे लगाए। नारों की ध्वनि से असेम्बली का भवन गूँज उठा। सभी दर्शक भयभीत और आश्चर्यचकित रह गए।

: १६ :

लिखित बयान

सरदार भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त ने छोटी अदालत में बयान देने से मना कर दिया। इसलिए इन्हें सैशन कोर्ट में ले जाया गया। जब भी ये लोग जेल से अदालत में ले जाए जाते थे, मार्ग में हजारों की भीड़ जमा होकर इनके दर्शन करती और "इंकलाब जिन्दाबाद, भगतसिंह की जय हो, बटुकेश्वर दत्त की जय हो, साम्राज्यशाही का नाश हो" के नारे स आकाश गूँज जाता था।

अदालत के भीतर घुसते ही इन दोनों ने 'इंकलाब जिन्दाबाद, साम्राज्यशाही का नाश हो" के जोरदार नारे लगाए। अदालत का कमरा आवाजों से गूँज गया।

८ जून, सन् १६३१ को इस अदालत में सरदार भगतसिंह

और बटुकेश्वर दत्त ने अपने लिखित बयान में जो कुछ कहा है, वह भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में बहुत महत्त्वपूर्ण वस्तु है। बयान बहुत लम्बा और प्रभावशाली शब्दों में था। इसका संक्षिप्त रूप इस प्रकार है--

पहले कुछ पन्नों में पुलिस, उसके बयानों, गवाहों के झूठे बयानों, प्रोसीक्यूटर आदि की कड़ी आलोचना करने के बाद उन्होंने लिखा था—

"हमने जो कुछ किया है, वह सोच-समझ कर किया है। इसमें कोई व्यक्तिगत स्वार्थ या विद्वेष की भावना नहीं थी। हमारा उद्देश्य केवल उस शासन के प्रति प्रतिवाद करना था, जिसके हर एक काम से उसकी अयोग्यता ही नहीं, बल्कि उसकी दुष्टता और निरंकुशता प्रकट होती है।

अब समय आ गया है, जब संसार को दिखा दिया जाए कि भारत आज किस लज्जाजनक और असहाय अवस्था के बीच से होकर गुजर रहा है। हमारा उद्देश्य तो एक गैर-जिम्मेदार अत्याचारी सरकार की पोल खोलना है।

जनता के प्रतिनिधियों ने एक बार नहीं, हजारों बार अपनी राष्ट्रीय माँगों को सरकार के सामने रखा। किन्तु उसने माँगों की ओर कभी ध्यान नहीं दिया। यद्यपि असेम्बली में माँगों की पूर्ति के लिए प्रस्ताव पास भी किये गए किन्तु पार्लियामेण्ट ने तिरस्कार के साथ इन प्रस्तावों को पैरों तले कुचल डाला।

अपने स्वार्थसाधन और शानशौकत के लिए इसने बहुत टीप टाप कर रखी है। इसकी सारी शान तैंतीस करोड़ भूखे-नंगे भारतवासियों का खून चूसकर उन्हीं की कमाई पर कायम है। ऐसी निकृष्ट अत्याचारी सरकार को जीवित रहने का कोई अधिकार नहीं है।

हमारी समझ में यह भी नहीं आता कि हमारे राष्ट्रीय नेता भी सरकार के धोखे में क्यों आ जाते हैं? इन नेताओं का प्रदर्शन केवल भारतीय परतन्त्रता की खिल्ली उड़ाने, जनता का समय

और धन नष्ट करने के अतिरिक्त कोई ठोस कार्य नहीं कर पाता।

इस ट्रेड डिस्प्यूट बिल से सिद्ध होता है कि इस सरकार का ध्येय जनशक्ति को कुचलने का ही है। वह मजदूरों को उनके अधिकारों से सदैव के लिए वंचित कर देना चाहती है। यह पूंजी-पतियों की सरकार है। मजदूरों की पुकार सुनने के लिए इसके कान बहरे हैं। हमारा उद्देश्य बम्ब फेंककर किसी को जान से मारने का नहीं था। हमने तो उन असहाय, पीड़ित मजदूरों की माँग पर ध्यान देने के लिए सरकार को आखिरी चेतावनी दी है।

जेल में ही कुछ पुलिस अफसरों द्वारा हमने सुना - कि लार्ड इरविन ने इस घटना के बाद ही असेम्बली की दोनों सभाओं के सम्मिलित अधिवेशन में कहा है, "यह विद्रोह किसी व्यक्ति विशेष के खिलाफ नहीं, बल्कि सारी शासन-व्यवस्था के विरुद्ध है।"

हमें यह सुन कर बड़ी प्रसन्नता हुई कि वायसराय ने हमारे इस कार्य करने के उद्देश्य को ठीक-ठीक समझा।

मनुष्यता की उपासना करने में हम किसी से भी कम नहीं हैं। हम प्राणीमात्र को आदर की दृष्टि से देखते हैं। हमें बर्बरता पूर्ण उपद्रव कतई पसन्द नहीं है। देश के कुछ सभ्य लोगों और अख-बारों ने किसी भ्रम में पकड़कर हमें पागल और नासमझ कहा है।

हम ऐसे लोगों को बता देना चाहते हैं कि कल्पित 'अहिंसा' का युग अब लद चुका है। उसकी व्यर्थता में नई पीढ़ी को किसी भी प्रकार का संदेह नहीं रह गया है। हमने हिंसा के भेद पर खूब ध्यान दिया है। हमारी समझ में किसी शत्रुता या व्यक्तिगत स्वार्थ से किया गया पाशविक बल हिंसा है। जिसका नैतिक दृष्टि से कुछ भी मूल्य नहीं है। किन्तु जब हिंसा का प्रयोग किसी उच्च आदर्श के लिये किया जाता है। वह हर प्रकार से क्षम्य है। हमारा यह नया आंदोलन, जो देश में बड़ी तेजी से बढ़ रहा है, गुरु गोविंदसिंह, छत्रपति शिवाजी, कमाल पाशा, वाशिंगटन, गैरी बाल्डी, लेनिन इन सभी महापुरुषों के अमर सन्देशों से प्रेरणा पा रहा है, उन्हीं के पदचिह्नों पर चल रहा है।

विदेशी सरकार और हमारे जनप्रिय कांग्रेसी नेता इस ओर कोई ध्यान नहीं दे रहे हैं। इसलिए हमने यह चेतावनी देना अपना कर्त्तव्य समझा। हमारा विश्वास है, इस तरह दी गई चेतावनी कभी व्यर्थ नहीं जा सकती।

असेम्बली में बम्ब फेंककर हमारा उद्देश्य किसी को मारने का नहीं था। अगर हम ऐसा चाहते तो जान-बूझकर कमजोर बम्ब न बनाकर शक्तिशाली बम्ब बनाते। इस कांड में जिन आधे दर्जन लोगों के मामूली चोटें आई हैं, हमारा ध्येय उनको भी किसी प्रकार का कष्ट देने का नहीं था। हम तो मानव जाति का उपकार करना चाहते हैं, उनके हित में हँसते-हँसते अपने प्राणों का उत्सर्ग करने में अपना सौभाग्य समझते हैं। यदि हमारा उद्देश्य किसी को मारने का ही होता तो मिस्टर साइमन, जो प्रेसीडेण्ट के पास ही बैठे थे, जिनके कमीशन के कारण ही हमारे देश में बड़े-बड़े अत्याचार हुए थे। बड़ी सरलता से मार डाले जा सकते थे।

इसके बाद हमने जान-बूझकर अपने-आपको गिरफ्तार कराया है और हम इसके लिए हर प्रकार का दंड भुगतने के लिए तैयार हैं। हमारा विश्वास है, यह अत्याचारी साम्राज्यशाही कुछ मुट्ठी-भर लोगों को फाँसी पर चढ़ाकर या जेलों में बन्द करके किसी आदर्श को जड़मूल से समाप्त नहीं कर सकती।

इतिहास से यह सिद्ध होता है कि "लैटर्स दी कैच्ड" (Latters the catched) तथा "बैसटीलिज" (Bestillies) फ्रांस के क्रान्तिकारी आन्दोलन को कुचल नहीं सके। फाँसी के तख्ते और साइबेरिया की खानें रूसी क्रान्ति की आग को बुझा नहीं सकी थीं।

क्या तरह-तरह के आर्डीनेंस और अत्याचार भारत के स्वतंत्रता संग्राम को कम कर सकते हैं! सरकार चाहे जो कर ले वह हमारी आजादी की राह को कभी बन्द नहीं कर सकती।

हम उसे एक बार फिर चेतावनी देते हैं, हमारी बातें हँसी में

उड़ा देने वाली या उपेक्षा की वस्तु नहीं हैं। स्वतन्त्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। यदि ब्रिटिश साम्राज्यशाही ने हमारे इस अधिकार को हमें जल्द ही नहीं सौंपा तो यह निश्चय है कि भारत में बहुत जल्द ही क्रान्ति का भयानक तूफान उठ खड़ा होगा जिसका नेतृत्व जनता के हाथों में ही होगा।

वास्तव में मजदूर ही समाज का वास्तविक पोषण है। इसलिए जनता का राज्य ही हमारा अन्तिम लक्ष्य है। हम अपने इस आदर्श के लिए मातृभूमि की सेवा में अपना यौवन हँसते-हँसते ही बलिवेदी पर चढ़ाने के लिए ही यहाँ आये हैं। क्योंकि इस महान् आदर्श के लिये बड़े से बड़ा त्याग भी कम है। हमें क्रान्ति के आगमन में कोई सन्देह नहीं है, हम उत्सुकता से उसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। 'इन्कलाब जिन्दाबाद'।

: २० :

क्रान्ति क्या है ?

दिल्ली की जेल में बटुकेश्वर दत्त अपनी कोठरी में पड़े थे। आधी रात हो चुकी थी। वार्डर अभी-अभी कैदियों की गिनती कराकर गया था। उन्हें नींद नहीं आ रही थी। वह सोच रहे थे, मुझे और सरदार भगतसिंह को "लाहौर कांन्सप्रेसी केस" में फँसाया गया। हम दोनों ही बहुत प्रसन्न हैं जिस उद्देश्य के लिए हमने कार्य किया था वह सफल हो गया। हमारे लिखित बयानों की कापियाँ सभी प्रमुख समाचार-पत्रों में छप चुकी हैं और अलग भी जनता के हाथों में पहुँचाई जा चुकी हैं। केवल इतना ही नहीं यह प्रतिलिपियाँ विदेशों तक में पहुँच चुकी हैं। यह सब काम हमारे दल ने इतनी खूबी से किया है कि सरकार को पहले से उसकी कोई सूचना नहीं थी। अब वह इन बयानों पर प्रतिबन्ध लगा भी दे तो क्या होता है ?

…सरदार भगतसिंह को "लाहौर कान्सप्रेसी केस" के अतिरिक्त सांडर्स हत्याकांड में भी फँसाया गया है। मालूम होता है, सरदार भगतसिंह को अपने आपको शहीद बनाने की इच्छा पूरी हो जायेगी। सरकार सांडर्स हत्याकांड को लेकर अवश्य ही उन्हें फाँसी पर लटका देगी।

यूँ तो हमारे दल में अनेकों वीर, साहसी और तपस्वी कार्यकर्त्ता हैं किन्तु सरदार भगतसिंह और चन्द्रशेखर आज़ाद अपने-अपने ढंग के निराले ही वीर हैं। आज़ाद अपनी निर्भयता और निशानेबाजी में अद्वितीय हैं। भगतसिंह का हर विषय में बड़ा गहन अध्ययन है। मार्क्सवाद के तो वह मानो पूर्ण पंडित ही हैं। उनसे अदालत में प्रश्न किया था, "तुम्हारे विचार में क्रान्ति क्या है ?"

उन्होंने अदालत को उत्तर देते हुए इस प्रश्न को कितने स्पष्ट शब्दों में समझाया था, "क्रान्ति से तात्पर्य केवल खूनी लड़ाइयों या व्यक्तिगत शत्रुता निकालना नहीं है, और न ही इसका उद्देश्य केवल बम्ब या पिस्तौलों का प्रयोग ही है। क्रान्ति का ध्येय अन्याय को जड़ से नष्ट कर देना ही होता है। हमारा उद्देश्य भी अपने देश की वर्तमान शासन प्रणाली को समूल नष्ट कर देना है क्योंकि अन्याय और दुराचार की भित्ति पर ही इसका निर्माण हुआ है। जब तक यह सरकार नष्ट नहीं होती तब तक भारतवासियों के किसी भी प्रकार के अधिकार सुरक्षित नहीं रह सकते।

वास्तव में किसान और मजदूर ही समाज के वास्तविक अंग होते हैं। इस शासन प्रणाली में उनको प्राथमिक अधिकारों से भी वंचित रखा जा रहा है। उनकी खून-पसीने की कमाई को पूंजीपति लोग खाये जा रहे हैं। समाज का अन्नदाता किसान अपने और अपने बच्चों के लिए दाने-दाने के लिए मुहताज रहता है। संसार भर के लिए सूत कातने वाला जुलाहा अपना और अपने परिवार का तन भी ठीक प्रकार के कपड़ों से ढक नहीं पाता है।

राजगीर, लुहार और बढ़ई चाहे जैसे सुन्दर-सुन्दर भवनों का निर्माण करें किन्तु उनका और उनके बच्चों का जीवन तो गन्दे से गन्दे झोंपड़ों में ही व्यतीत होता है।

इसके विपरीत पूंजीपति आज हर प्रकार से सुखी हैं। वह जोंक की भांति समाज रूपी शरीर से धन रूपी रक्त बराबर चूसते रहते हैं। वे केवल शानशौकत से जीवन ही व्यतीत नहीं करते बल्कि तरह-तरह की अय्याशियों और बदमाशियों में भी मनमाना धन खर्च करते रहते हैं।

हमारी समझ में आज का धनिक वर्ग भयानक ज्वालामुखी से खेल रहा है। समाज की यह दशा अब अधिक दिनों तक रहने वाली नहीं है। समाज के इस दुराचार को यदि समय रहते सँभाला न गया तो केवल भारत ही नहीं विश्व के कोने-कोने में भयानक क्रान्ति की लहर आयेगी। हमारा देश गुलाम है। इसलिए हमारी दशा अन्य देशों की अपेक्षा और अधिक खराब है इसीलिए यहाँ और भी अधिक क्रान्तिकारी परिवर्तनों की आवश्यकता है।

हम चाहते हैं कि जो लोग समाज की इस महान दुर्बलता को अनुभव करते हैं, उनका परम कर्त्तव्य है कि वे साम्यवादी सिद्धान्तों पर समाज का पुर्ननिर्माण करें। जब तक ऐसा नहीं किया जाता तब तक एक आदमी दूसरे आदमी को, एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को बन्द नहीं कर सकता। संसार से साम्राज्यशाही का अन्त नहीं हो सकता।

आज मानवता जिस क्लेश और संकट से गुजर रही है, उसे देखते हुए विश्व के बड़े-बड़े जिम्मेदार लोगों के लिए बड़े शर्म की बात है। जब तक मानव समाज के कष्ट दूर नहीं होते तब तक यह कहना कि लड़ाई बन्द हो गई है या हम विश्व शान्ति की ओर प्रगति कर रहे हैं केवल यह एक ढोंगमात्र है।

क्रान्ति से हमारा अभिप्राय केवल उस सामाजिक संगठन से ही है, जिसमें मानव मात्र को ऊपर बताई गई बाधाओं का भय न

हो। मानव, मानव में किसी प्रकार का भेद न हो।

हम केवल अपने देश के लिए ही इन बातों को नहीं सोचते हैं। बल्कि हमारा उद्देश्य तो केवल यह है कि इस तरह का सामाजिक परिवर्तन अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर किया जाये जिससे विश्व-भर की पीड़ित जनता इन मानवी कष्टों से छुटकारा पा सके। तभी संसार से युद्ध के मँडराते बादल हटाये जा सकते हैं। तभी विश्व शान्ति की स्थापना संभव हो सकती है।"

कितने सुन्दर और स्पष्ट विचार हैं, क्या अब भी हमें खूनी और हत्यारा कह-कहकर पुकारा जा सकता है?

जब तक पूंजीवाद है, पूंजीवाद का स्वार्थ है, तब तक वह हमें हत्यारे ही कहता रहेगा।

: २१ :

भूख हड़ताल

उन दिनों राजनैतिक बन्दियों के साथ बड़ा दुर्व्यवहार किया जाता था। उन्हें अनेकों प्रकार के कष्ट दिये जाते थे। सन् १९१६ में 'बनारस षड्यन्त्र केस' के ग्यारह बन्दियों में से तीन तो इन्हीं अत्याचारों के कारण जेल में ही मर गये थे। एक पागल हो गया।

इस तरह अत्याचारों को मिटाने और राजनैतिक कैदियों को सुविधाएँ दिलाने के लिए बड़े-बड़े संघर्ष किए गए। अनेकों बार राजनैतिक कैदियों ने भूख हड़तालें कीं। किन्तु सरकार पर कोई प्रभाव नहीं। 'काकोरी केस' के बन्दियों की भूख हड़ताल ने अवश्य ही जनता का ध्यान इस ओर आकर्षित किया था।

सरदार भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त ने भी लाहौर कान्स-प्रेसी केस में बन्द होने के बाद राजनैतिक कैदियों के लिये जेल में सुधार के लिए भूख हड़ताल करने का निश्चय किया। उन्होंने

बड़ी चतुराई से अपने इस निश्चय की सूचना समाचार पत्रों में पहुँचा दी जिससे सभी ओर से उनको माँगों को पूरा-पूरा समर्थन प्राप्त हुआ।

यद्यपि सरदार भगतसिंह का इसमें कोई स्वार्थ नहीं था। क्योंकि एक तो उनके साथ में कोई बुरा व्यवहार किया ही नहीं जा रहा था। दूसरे बार-बार उनकी शिनाख्त कराये जाने से उन्हें विश्वास हो गया था कि उन्हें 'सांडर्स हत्याकांड' में अवश्य फँसाया जाएगा जिसका मतलब होगा, फाँसी। इसलिए भी सुधार हो जाने से उन्हें कोई लाभ नहीं था। किन्तु उनका जीवन तो सदैव दूसरों के लिए ही था। उन्हें तो अपने लिए नहीं बल्कि अपने दूसरे भाइयों, राजनैतिक कैदियों को लाभ पहुँचाना था।

निदान एक दिन कुछ माँगों को लेकर भूख हड़ताल आरम्भ कर दी गई। उन्होंने सरकार से राजनैतिक कैदियों के लिए कई माँगें कीं। इन बन्दियों को हर प्रकार से आपस में मिलने-जुलने और पठन-पाठन की सुविधाएँ दी जायें। उन्हें अपने अन्य कैदियों की अपेक्षा खाना अच्छा दिया जाए। क्योंकि इन्होंने जा कुछ किया है, वह किसी व्यक्तिगत भावना से नहीं बल्कि देश प्रेम की पवित्र भावना के ही वशीभूत होकर किया है।

इस हड़ताल का उद्देश्य कोई आदर्श स्थापित करना भी नहीं था। इसलिए कोई ऐसी माँग नहीं रखी गई। जो सरकार पूरी न कर सके और बाद में व्यर्थ हँसी उड़ाने का साधन बन जाये। इस हड़ताल का उद्देश्य तो केवल राजनैतिक बन्दियों को कुछ आवश्यक सुविधायें प्राप्त कराना ही था।

उधर लाहौर जेल में श्री यतीन्द्रनाथ दास ने भी अपनी भूख हड़ताल इसी सम्बन्ध में आरम्भ कर दी। चारों ओर हड़ताल के बारे में टिप्पणियाँ होने लगीं। सरकार को लिखा जाने लगा। इससे हड़तालियों का साहस तो बढ़ा किन्तु खाना न खाने से जो कष्ट बढ़े वह भी बड़े भयानक थे। इससे धीरे-धीरे हड़ताल में आदर्शवादिता की गंध आने लगी और इसने और भी अधिक

जोर पकड़ लिया। कुछ अन्य कैदियों ने इनकी सहानुभूति में भी हड़तालें कीं।

सरकार यह नहीं समझती थी कि यह मामला इतना तूल पकड़ जायेगा। उनका ख्याल था, भूख की यंत्रणा से व्याकुल होकर धीरे-धीरे सब ठीक हो जायेंगे। किन्तु हड़ताल दिन प्रति-दिन उग्र रूप धारण करती गई। धीरे-धीरे पूरा एक महीना बीत गया। अन्त में पंजाब सरकार को इस मामले में झुकना पड़ा और उसने कुछ सुधारों की घोषणा कर दी।

२८ जुलाई, १९२९ को यतीन्द्रनाथ दास की दशा बड़ी शोच-नीय हो गई। सरदार भगतसिंह ने एक काँग्रेसी व्यक्ति के द्वारा श्री दास से हड़ताल तोड़ डालने का अनुरोध किया। साथ ही यह भी कहलवा भेजा कि मामले की सारी बातें मुझ पर और बट-केश्वर दत्त पर छोड़ दी जायें। हम सरकार से सब कुछ निबट लेंगे।

उधर यतीन्द्रनाथ जी की दशा और भी अधिक खराब हो गई। उन्होंने एनीमा लेने तक से इन्कार कर दिया। उनके सारे शरीर में विष फैल गया किन्तु उन्होंने हड़ताल न तोड़ी। अंत में पंजाब सरकार ने सरदार भगतसिंह से अनुरोध किया कि वह यतीन्द्रनाथ दास की भूख हड़ताल तुड़वा दें। इसी काम के लिए उन्हें मियाँवाली जेल से लाहौर जेल में भेजा गया। श्री दास ने भगतसिंह का कहना मानकर एनीमा लगवा लिया। जिस काम को पूरी पंजाब सरकार पूरा न कर सकी वही काम भगतसिंह के कुछ शब्दों से पूरा हो गया। जेलर ने यतीन्द्रनाथ से कहा, "मिस्टर दास, हमने आपसे हजारों बार प्रार्थना की लेकिन आपने अपनी जिद न छोड़ी। किन्तु भगतसिंह जी के कहने से वही बात क्यों मान ली?"

यतीन्द्रनाथ दास ने मुस्करा कर उत्तर दिया, "भगतसिंह इतना वीर है कि उसकी बात को टालने की सामर्थ्य मुझमें नहीं है।"

इसके बाद सरदार भगतसिंह ने सरकार से अनुरोध किया कि वह यतीन्द्रनाथ दास को बिना किसी शर्त के छोड़ दे। जेल अधिकारी भी उनकी इस बात से सहमत थे किंतु सरकार ने उन्हें नहीं छोड़ा। इस बात को लेकर इन लोगों ने फिर भूख हड़ताल शुरू कर दी। इसी में यतीन्द्रनाथ दास स्वर्ग सिधार गये। उनका शव एक स्पेशल ट्रेन द्वारा कलकत्ते ले जाया गया।

सरदार भगतसिंह जी की भूख हड़ताल लगातार ११५ दिन तक चली। इसने विश्व के सभी भूख हड़तालियों का रिकार्ड तोड़ दिया। संसार भर ने इस पर आश्चर्य माना। लोग कहते थे, "क्या मृत्यु भी इस वीर से लोहा लेने से काँपती है?"

बाद में "पंजाब जेल इंक्वायरी कमेटी" ने इनकी बहुत-सी बातें मान लीं और इन्होंने हड़ताल तोड़ दी।

: २२ :

दृढ़ता

भूख हड़ताल और उसकी सफलता से सरदार भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त की प्रसिद्धि को चार चाँद लग गये। अब "लाहौर कांसप्रेसी केस" की सुनवाई जेल में ही होने लगी। किंतु इसमें आम जनता को आने की आज्ञा न थी। इस बात को सुनकर सरदार भगतसिंह ने फिर अदालत में जाने से इंकार कर दिया। क्योंकि उनका उद्देश्य तो अपने बयानों द्वारा सरकार का भंडा-फोड़ जनसाधारण में करना था। अंत में सरकार ने आम जनता को मुकद्दमा देखने व सुनने की आज्ञा दे दी।

"इंकलाब जिंदाबाद, जनता के राज्य की जय हो, साम्राज्य-शाही का नाश हो" के नारों से नित्य अदालत की कार्यवाही प्रारम्भ की जाती थी। मुकद्दमे को देखने के लिए हजारों नर-नारी आते थे। वे इन वीरों के दर्शन करके अपने को धन्य समझते थे।

इस मुकद्दमे में जयगोपाल पुलिस का मुखबर बन गया था। इस मुकद्दमे की एक विशेष बात यह भी थी कि मुलजिम लोग गवाहों से स्वयं जिरह करते थे। एक दिन जयगोपाल ने अपने बयानों के दौरान में मुलजिमों को कुछ भला-बुरा कहा और मूंछें मरोड़ते हुए गर्व से उनकी ओर देखा। इसमे सभी मुलजिम उसके लिए "शेम, शेम" चिल्लाने लगे। उसी समय एक छोटे मुलजिम प्रेमदत्त ने चप्पल उतारकर जयगोपाल पर फेंककर मारी। अदालत ने उसी समय कार्यवाही बंद कर दी और आज्ञा दी कि अब से आगे मुलजिमों को हथकड़ियाँ पहनाकर ही अदालत में लाया जाये।

भगतसिंह जी और उनके साथियों ने निश्चय किया, चाहे कुछ भी हो, वे इस तरह के अन्याय के आगे कभी सिर न झुकायेंगे और तब तक अदालत में न जायेंगे जब तक कि वह अपनी इस अपमानजनक आज्ञा को वापस नहीं लेती।

दूसरे दिन पुलिस मुलजिमों को हथकड़ी पहनाकर अदालत में ले जाने के लिए आई। किन्तु बड़ी मुश्किल से सोलह में से पांच आदमियों को ले जा सकी किन्तु जेल के फाटक पर बहुत कोशिश की गई ये पाँचों आदमी किसी तरह भी लारी से नीचे नहीं उतरे। दूसरे दिन ये लोग इस बात पर तैयार हो गये कि आज तो हथकड़ी पहने चले चलते हैं किन्तु हमारे अदालत में पहुँचते ही अदालत अपनी इस आज्ञा को वापिस ले ले। मगर अदालत ने ऐसा नहीं किया। खाना खाने की छुट्टी में इन्होंने हथकड़ियाँ उतरवाने की प्रार्थना की वह मान ली गई। किन्तु इसके बाद पुलिस ने बहुत कोशिश की परन्तु इन्होंने हथकड़ियाँ न पहनीं। पठानों की पलटन विशेष कर इसी काम के लिये बुलाई गई। उसने मुलजिमों पर बड़ी बेदर्दी से मार लगाई। सरदार भगतसिंह सबसे अधिक पीटे गए। फिर सोलह आदमियों में से एक भी हथकड़ी पहनने को तैयार न हुआ।

उपस्थित दर्शकों पर जिनमें बहुत संख्या में स्त्रियाँ भी थीं

पुलिस के इस अमानुषिक अत्याचार का बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा। उसी दिन शाम लाहौर में एक सभा की गई। उसमें पुलिस की घोर निन्दा की गई। फिर दूसरे दिन से ही सभी राष्ट्रीय समाचार-पत्रों ने भी इसका बड़ा कड़ा विरोध किया।

पुलिस उन लोगों को केवल अदालत में ही मार कर संतुष्ट नहीं हुई। जेल के भीतर भी लाठी, डंडों, बेंतों, ठोकरों आदि हर प्रकार के सम्भव तरीकों को प्रयोग में लाकर खूब मार लगाई गई। अन्त में पुलिस ने हार कर अपनी रिपोर्ट दे दी, "चाहे जो कुर्मा किया जाए। किन्तु मुलजिमों को हथकड़ियाँ पहनाना किसी तरह भी सम्भव नहीं हो सकता। अब तो अदालत को भी हार मानकर अपनी आज्ञा बदलनी पड़ी।

लाहौर कांसप्रेंसी केस केवल भारत में ही नहीं विदेशों में भी बहुत प्रसिद्ध हुआ। जापान, कनाडा, अमरीका आदि बहुत से विदेशों से केस लड़ने के लिये चंदा आने लगा। पौलेंड की एक स्त्री ने तो कुछ रुपये केवल इसलिए भेजे थे कि उसे मुकद्दमे की पूरी-पूरी जानकारी मिलती रहे। कई देशों में सरदार भगतसिंह दिवस मनाए गए। उनके चित्रों के कलेंडर छापे जो जनता में बहुत प्रिय हुए।

भारत के बड़े-बड़े राष्ट्रीय नेता पंडित मोतीलाल नेहरू, सुभाष चंद्र बोस, रफी अहमद किदवई आदि मुलजिमों से मिले और उन लोगों के ऊपर भी इस केस का काफी प्रभाव पड़ा।

'लाहौर कांसप्रेंसी केस' का प्रभाव इतना अधिक और तेजी से बढ़ता देखकर भारत सरकार काँप उठी। वह इस भयंकर स्थिति से बचने का उपाय सोचने लगी। अंत में पंजाब सरकार ने 'लाहौर कांसप्रेंसी केस आर्डीनेंस' के नाम से एक आर्डीनेंस निकाला। पहले तो भारत सरकार इसे लागू करने में डर रही थी। उसे भय था, जनता विद्रोह कर उठेगी। किंतु बाद में किसी तरह साहस करके आर्डीनेंस नम्बर ४ के नाम से १६३० में इसे लागू कर दिया।

सरदार भगतसिंह और उनके साथियों ने सोचा, "सरकार नित्य नये-नये कानून बनाकर उन पर अत्याचार कर रही है। इसलिये यह बड़ा अच्छा अवसर है जब संसार के सामने ब्रिटिश शासन की न्यायप्रियता की पोल खोल दी जाये।

उन्होंने उसी तरह बड़ी अदालत में भी मुकद्दमे की कार्यवाही शुरू करने से पहले राष्ट्रीय गान गाया और इंकलाब जिंदाबाद के नारे लगाना आरम्भ कर दिया। पुलिस पहले ही अनुभव कर चुकी थी कि मुलजिमों की इच्छा के विरुद्ध उनसे कोई काम कराना असम्भव है। इसलिये अदालत की कार्यवाही मुलजिमों की अनुपस्थिति में ही होने लगी। इस प्रकार क्रांतिकारियों को ब्रिटिश सरकार के न्याय के ढोंग का भंडाफोड़ करने के लिए एक अच्छा रंगमंच मिल गया, जिसे सारे संसार ने देखा।

: २३ :

फैसला

'लाहौर कांसप्रेंसी केस' के मुलजिमों को जेल से बाहर निकालने के लिये क्रांतिकारी दल ने प्रयत्न किया। इसमें सरदार भगतसिंह के पुराने साथी श्री भगवतीचरण प्रमुख थे। किंतु एक दिन अचानक बम्ब फट जाने से उनकी मृत्यु हो गई और योजना खटाई में पड़ गई। वह इस बम्ब को जेल की दीवारों पर प्रयोग करने जा रहे थे। दुर्भाग्य से बम्ब जेल से कुछ सौ गज की दूरी पर ही फट गया।

७ अक्टूबर, १९३० को अदालत में एक विशेषदूत द्वारा सेंट्रल जेल में अपना फैसला सुनाने के लिये भेजा। तीन फैसलों के चारों ओर काले बार्डर लगे हुए थे। सरदार भगतसिंह, शिवराम, राजगुरु और सुखदेव को फाँसी का दण्ड दिया था। बटुकेश्वर दत्त तथा कुछ अन्य साथियों को आजीवन काला पानी।

'लाहौर कांसप्रैंसी केस' शुरू होने के समय जनता और देश, सभी हिंदू-मुसलमान नेताओं ने एक डिफेंस कमेटी बनाई थी। इस कमेटी ने बहुत सा चंदा इकट्ठा किया। मुलजिमों को पुस्तकें तथा अन्य सुविधाजनक वस्तुएँ जेल में पहुँचाई। मुकद्दमे की पैरवी मुलजिमों की ओर से की गई।

इस फैसले के बाद कमेटी ने इसकी अपील 'प्रीवी कौंसिल' में की यद्यपि कमेटी और भारतीय जनता खूब जानती थी कि अपील करना व्यर्थ ही सिद्ध होगा। किंतु उस ब्रिटिश सरकार के खोखलेपन का प्रचार करने और विश्व के सम्मुख इसे रखने का अच्छा अवसर मिला था।

वायसराय लार्ड इरविन ने नये आर्डीनेंसों और फांसी का दण्ड दिये जाने के विषय में एक भाषण दिया था। जिसमें उन्होंने अभियुक्तों के चरित्र पर झूठा कलंक मढ़ने का प्रयत्न किया था। अपील के द्वारा संसार को ऐसे झूठे अभियोगों और यतींद्रनाथ दास के जैसे निस्वार्थ त्यागों का दिग्दर्शन कराना था।

इधर विजयकुमार और सरदार भगतसिंह तो यह चाहते थे कि जब जनता में भरपूर जोश फैले तब ही फाँसियाँ लगें जिससे भावी क्रांति की जड़ें बहुत गहरी फैल सकें। इसीलिए भी वह कुछ दिनों को टालना ही उचित समझते थे। फिर भी उन्हें डर था, कहीं कांग्रेसी सरकार से इस विषय में कोई अपमानजनक फैसला न कर लें। उनकी इच्छा थी कि फाँसियों द्वारा कांग्रेस की खोखली राजनीति की पोल खुल जाये और समस्त भारत की राजनीति की बागडोर नवयुवकों के हाथ में आ जाये।

जेल के चारों ओर सशस्त्र पुलिस का पहरा था। दूसरे दिन आठ अक्तूबर को फाँसी का दुःखद समाचार सारे देश में बिजली की तरह फैल गया। लाहौर में इसका विरोध करने के लिये जुलूस निकाला गया। तरह-तरह के नारे लगाये। सारे बाजारों और स्कूलों में पूर्ण हड़तालें मनायीं। बड़े-बड़े ओजस्वी भाषण हुए। सरकार ने दफा १४४ लगाकर बहुत से नवयुवकों और नव-

युवतियों को गिरफ्तार कर लिया।

फिर तो देश भर के समाचार पत्रों ने फांसी के दण्ड की कड़ी आलोचना की। बड़े-बड़े नेताओं के वक्तव्य इसके विरोध में छापे गये। कई पत्रों ने तो स्पेशल नम्बर निकालकर तीनों के चित्र भी छापे। जेल अधिकारी आश्चर्य में थे, उन्हें चित्र मिल कहाँ से गये।

सारे भारत वर्ष में शोक की लहर छा गई। जनता ने इस दंड का विरोध करने में कोई कमी नहीं छोड़ी। ब्रिटिश राज्य के इतिहास में किसी भी फाँसी के दण्ड के विरोध में इतना प्रदर्शन नहीं किया गया जितना कि इस समय हुआ था। देश के बड़े-बड़े चुनींदा लोगों ने वायसराय से अनुरोध किया कि वह अपने विशेषाधिकारों का प्रयोग करके इन फाँसियों को रद्द कर दें। किंतु उन्होंने इस ओर कोई ध्यान ही नहीं दिया।

: २४ :

फाँसी के पहले

रंग दे रे बसन्ती चोला। रंग दे रे०
इसी रंग में रंग के शिवा ने,
माँ का बन्धन खोला।
रंग दे रे बसन्ती चोला।
....

....

२३ मार्च, सन् १९३१ को दोपहर होने वाली थी। सरदार भगतसिंह फाँसी की कोठरी में बैठे हुए मस्ती में गा रहे थे। कल इन तीनों को फाँसी दी जाने वाली थी। गाते-गाते उनका ध्यान भी कल होने वाली घटना की ओर चला गया। वह मुस्कराये और सोचने लगे—

"माता पिता ने सोचा था, भगत की शादी करके उसे बन्धनों में बाँध दें। उन्हें कल होने वाली शादी का पता नहीं था। कल विवाह की वेदी के स्थान पर बलिवेदी होगी। दुल्हिन की जगह मृत्यु का वह रूप होगा जिसे प्राप्त करके मनुष्य अमर हो जाता है। साथ में मेरे दो भाइयों, राजगुरु और सुखदेव का भी विवाह होगा। यह हम लोगों के सौभाग्य का सबसे बड़ा कठिन दिन है।

किन्तु इसमें पिता जी का दोष है? वह भी कम देशभक्त नहीं हैं। किन्तु हर मनुष्य के अलग-अलग कर्त्तव्यों के अनुसार अलग-अलग रूप हो जाते हैं। उनके भी दो रूप हैं, एक देशभक्त, दूसरा पिता का। देशभक्त होने के नाते उन्होंने मुझे बचपन से ही देश-भक्ति में ढाला। किंतु पिता होने के नाते उन्होंने विवाह की भी योजना बना डाली। अब भी मुकद्दमे के दौरान में एक पिता की हैसियत से उन्होंने सरकार से अपील की थी किंतु मेरे मना करने पर उनके भीतर सोया हुआ वीरत्व जाग उठा और वह मान गये।

किंतु···अब फाँसी की सजा पर उनकी आँखों में आँसू फिर पितृ-स्नेह की दुर्बलता स्पष्ट कर रहे थ। माँ, दादी, रिश्तेदार जो भी आया वही स्नेह की दुर्बलता के आँसू बहाता हुआ। उस छोटे भाई को मैंने काफी समझा दिया था। फिर एक पत्र भी लिख दिया था।

इन बेचारों को कैसे समझाया जाय, देशभक्ति के आगे स्नेह का बंधन नहीं रहता। इसमें सभी का मोह त्याग देना पड़ता है। आज़ाद ठीक कहते हैं, देशभक्ति का जामा पहिन कर फिर दूसरी कोई बात सोचने को रह ही नहीं जाती।

ओह! आज़ाद?···आज़ाद तो आजाद हो गये। गत २७ फरवरी को पुलिस से लड़ते-लड़ते वीरगति को प्राप्त हुए। कितना भाग्यवान था वह भारत का शेर। जो जीवन भर आज़ाद रहा और मरते समय भी आज़ाद रहा।

मृत्यु···मृत्यु हम लोगों के लिए क्या है? केवल एक खेल! शहीद के पवित्र रक्त की एक-एक बूंद क्रांति की ज्वालायें उग-

नतो है। क्या शहीद भी कभी मरा है? उसकी आत्मा मातृ-भूमि के कण-कण में मानव मात्र के हृदयों से सजग रहती है। वह सदैव अपने सिद्धान्तों की अटलता का प्रतिपादन करता रहता है।

कितने हर्ष की बात है, कल हम लोगों की गिनती भी उन्हीं शहीदों की पवित्र सूची में लिख दी जायेगी। संसार की कैसी विचित्र माया है? एक का दुःख दूसरे के हर्ष का विषय बन जाता है। कल हमारी मृत्यु पर सारा देश रोयेगा किंतु हमारी मृत्यु हमारे लिये ही हर्ष का विषय है। देश के रोने में एक बात छिपी हुई है जिसे देशवासी जानकर भी कल उसे भूले से रहेंगे।…वह है गर्व…देश को हमारी मृत्यु पर गर्व होगा। आज अंग्रेज सरकार को दुर्नीति का भंडाफोड़ सारे विश्व के सामने हो चुका है। हमारी राष्ट्रीय संस्था काँग्रेस की दुर्बलता भी सबके सामने प्रकट हो चुकी है। अब आज़ाद नहीं रहे, हम भी नहीं होंगे। किंतु देश में वह जागृति आ चुकी है जिससे अनेकों आज़ाद और भगतसिंह उत्पन्न हो जायेंगे।

आज़ाद से मुझे एक बात पर ईर्ष्या है, वह पुलिस की गोली से मुठ-भेड़ करते हुए मरे। मैं भी इसी तरह मरना चाहता था। सांडर्स हत्याकांड के दिन हमारी यही योजना थी किन्तु पुलिस जो कायर और गुलाम है, उस समय सामने आई ही नहीं। जब उसने समझ लिया हम लोग घटनास्थल से हट गये, हमारा जोश वह नहीं रह गया होगा तब ही उसने कालिज होस्टल का घेरा डाला।

मैंने सरकार से प्रार्थना की थी, "हम राजनैतिक कैदी हैं। हमें फाँसी देने की बजाय गोली से उड़वा देना चाहिए। किन्तु सरकार ने इस ओर कोई ध्यान ही नहीं दिया। हमारी इच्छा पूरी न हो सकी।…"

सर फ़रोसी की तमन्ना अब हमारे दिल में है,
देखना है ज़ोर कितना बाज़ुये कातिल में है!

शिवराम राजगुरु अपनी कोठरी में गा रहे थे।

"ग्राहा ! यह लोग भी कितने प्रसन्न हो रहे हैं । इस मुकद्दमे के दौरान कई बार भूखहड़तालें करने के बावजूद भी हम लोगों का वजन बहुत बढ़ गया है । इसका कारण वैसी ही खुशी है जैसे सत्रह वर्षीय खुदीराम बोस को फाँसी के तख्ते पर चढ़ते समय हुई थी ।

नहीं रखनी सरकार जालिम,
नहीं रखनी ।

उधर तीसरी कोठरी से ग्रावाज ग्रा रही थी, सुखदेवजी गाने में मस्ती ले रहे थे ।

इसी समय लगभग तीन बज चुके थे । इन तीनों को सूचना मिली, "फाँसी ग्राज रात को ग्राठ बजे लगने वाली है ।"

भगतसिंह का स्वभाव जन्म से ही बड़ा हँसमुख था । वह जेलर से बोले, "ग्रजी जनाब जेलर साहब ! ग्रापकी सरकार ग्रपने बनाये कानून कायदों पर स्वयं ही क्यों नहीं रहती है । एक तो फाँसी एक दिन पहले ! ऐसी क्या जरूरत ग्रा पड़ी ? दूसरे रात को ग्रौर फाँसी ! ग्राज तक तो कभी सुना नहीं !"

जेलर बेचारा क्या उत्तर देता । चुपचाप चला गया ।

: २५ :

फाँसी

२३ मार्च, सन् १९३१ की रात के सात बजने वाले थे । फाँसी के तीनों तख्ते बराबर-बराबर तैयार थे । बिजली की रोशनी हो रही थी । जेलर, डाक्टर ग्रौर मजिस्ट्रेट व सिपाही ग्रादि सभी खड़े थे । सभी ने बड़े ग्राश्चर्य से देखा, वे तीनों इस तरह प्रसन्न मुद्रा में बातें करते चले ग्रा रहे थे मानो किसी उत्सव में भाग ले रहे हों ।

फाँसी का दृश्य देखने के लिये एक योरोपियन डिप्टी कमि-

श्नर भी आये हुए थे। भगतसिंह ने उनसे कहा, "आप बड़े भाग्यवान हैं, जो आपको यह देखने का अवसर मिला कि भारतीय क्रान्तिकारी अपने महान् आदर्श के लिए किस प्रकार हँसते-हँसते मृत्यु का आलिंगन करते हैं ?"

सबसे पहले "वन्दे मातरम्" राष्ट्रीय गीत गाया गया। फिर इन्कलाब ज़िन्दाबाद के जोरदार नारे लगे। ७ बजकर ३३ मिनट पर तीनों को एक साथ फाँसी दे दी गई।

फाँसी लगने के पन्द्रह मिनट पहले से ही इंकलाब जिन्दाबाद के नारे लग रहे थे। फाँसी लगने के बाद भी ऐसा मालूम पड़ता मानो जेल की दीवारें, वहाँ की चप्पा-चप्पा भूमि पुकार रही हो 'इन्कलाब जिन्दाबाद।'

श्री रामप्रसाद बिस्मिल ने फाँसी पर चढ़ते समय ठीक ही कहा था—

'शहीदों की चिताओं पर जुड़ेंगे हर बरस मेले,
वतन पर मिटने वालों का यही बाकी निशाँ होगा।"

इसके बाद रात में ही तीनों के शव रावी नदी के किनारे ले जाये गये और मिट्टी का तेल डाल कर थोड़ी सी लकड़ियों में जला दिये गये। लकड़ियाँ इतनी कम थीं कि बाद में आने-जाने वालों ने वहाँ माँस के अधजले टुकड़े भी पाए थे। इतनी बड़ी अंग्रेजी सरकार इतनी ओछी बन गई थी कि वह इन्हें ठीक से लकड़ियाँ भी न दे सकी।

२४ मार्च को सवेरे से ही भारत के कोने-कोने में उत्तेजना फैल गई। सभी जगह बिजली की तरह यह समाचार फैल गया कि सरदार भगतसिंह और उनके दोनों साथी शहीद कर दिये हैं।

शवों के लेने का प्रश्न आया तो पता चला कि अब शव नहीं हैं।

रावी के किनारे लाखों नर-नारियों की भीड़ जमा हो गई। रावी की गति बड़ी शान्त थी मानो किसी महान् कलंक में अत्याचारी मानव ने उसे भी घसीट लिया है। इधर लोगों की आँखों

मे गंगा-जमुना की धाराएँ बह रही थीं। वहां पास ही एक झोपड़ी वाले से मालूम हुआ कि चारों ओर पुलिस का पहरा था, बीच में चिता जल रही थी। तीनों को एक ही चिता में जला दिया गया।

वह जगह जहाँ चिता बनाई गई थी अभी तक गरम थी। वहाँ से मिट्टी के तेल की दुर्गन्ध आ रही थी। कहीं-कहीं माँस के अधजले टुकड़े पड़े थे।

भगतसिंह जी की बहिन ने सिसकते हुए एक टुकड़ा उठाया। श्रद्धा से अपने माथे पर लगाया और बटुए में रख कर ले गईं जो अभी तक उनके पास मौजूद है।

फिर इसके बाद सभी नर-नारियों ने वहाँ की मिट्टी का गन्धपूर्ण होते हुए भी श्रद्धा से अपने-अपने सिरों पर रखा। उस गरम भूमि की प्यास उन लोगों के आँसुओं से कुछ मिनटों में ही तृप्त हो गई।

तीन दिन तक यहाँ बराबर मेला सा लगा रहा। पंजाब के कोने-कोने से लोग वहाँ अपने प्रिय नेता को श्रद्धांजलियाँ देने आते रहे।

देश अभी चन्द्रशेखर आज़ाद की मृत्यु को भूल भी न सका था। उनकी आँखों में आज़ाद की मृत्यु के आँसू सूखे भी न थे कि इन तीनों की फाँसी के समाचार ने करुणा का सागर उँडेल दिया। सभी धाड़ मारकर रो पड़े।

: २६ :

उपसंहार

सरदार भगतसिंह ने जिस बात का बीड़ा उठाया था उसे उन्होंने पूरा कर दियाया। सन् १९३१ में उनकी मृत्यु के समय देश में क्रांति की जो आग भड़कने वाली थी, उसे भले ही उन

समय हमारे राष्ट्रीय नेताओं और सरकार ने दबा सा दिया था किंतु वह पूरी तरह दबी नहीं थी। सन् १९४२ में अवसर पाकर अपने आप ही भड़क उठी।

सन् १९४५ में जन सेना का विद्रोह भी उसी क्रांति का एक अंग था। इन दिनों की क्रांतियों से अंग्रेजों के पाँव डगमगाने लग गए थे। उधर अंतर्राष्ट्रीय स्थिति भी उनके पक्ष में नहीं थी इसलिए विवश होकर उन्हें यहाँ से भागना पड़ा।

इसमें कोई संदेह नहीं, हमारी स्वतंत्रता रूपी महल की नींव के ये क्रांतिकारी ही पत्थर हैं। इनके खून और हड्डियों पर ही हमारा यह महल खड़ा है। भले ही नींव के पत्थर दिखाई न दें। किन्तु महल का आधार क्या है, यह तो सभी को जानना चाहिये।

सरदार भगतसिंह की मृत्यु पर हमारे जनप्रिय नेता पंडित जवाहरलाल नेहरू ने स्वयं कहा था—

"पर जो अब नहीं रहा है, उसके लिए अभिमान बना रहेगा और जब इंग्लैंड हमसे बातें करेगा और समझौते के लिए कहेगा तो हमारे बीच में सरदार भगतसिंह की लाश पड़ी होगी, जिससे कहीं हम उसे भूल न जायें।"

गत महायुद्ध के बाद अंग्रेजों की अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति और बहुत-से कारणों से तो बिगड़ी ही हुई थी किन्तु सरदार भगतसिंह की फाँसी, लाहौर कांसप्रेसी केस में उसकी नीति का भंडाफोड़ हो चुका था, उसका भी उसे डर नहीं था।

□ □

Acc. No. 77937
Date 12/3/92
SIMLA

Library IIAS, Shimla
H 923.254 B 469 M
00077937